वार्षिकांक 11

वर्ष 2018–19

कृषि किरण

भाकृअनुप
ICAR

ISO : 9001-2015

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल–132 001 (हरियाणा)

सुस्वागतम
स्वर्ण जयंती
कृषि उन्नति मेला
9 अक्तूबर 2018 (मंगलवार)
11.00 बजे से प्रारम्भ
मुख्य अतिथि
श्री परशोत्तम रूपाला

कृषि किरण

वार्षिकांक 11

वर्ष 2018-19

कृषि किरण

भाकृअनुप-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल-132 001 (हरियाणा)

संपादक मंडल

अध्यक्ष

प्रबोध चन्द्र शर्मा (निदेशक)

संपादक

रामेश्वर लाल मीणा (प्रधान वैज्ञानिक)
कैलाश प्रजापत (वैज्ञानिक)

सदस्य

मदन सिंह
सुनील कुमार त्यागी
अंशुमान सिंह

आवश्यक नोट

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशक :

निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132 001
दूरभाषः 91–1842290501, ई–मेलः director.cssri@icar.gov.in, वेबसाईट : www.cssri.org

मुद्रक :

एरोन मीडिया
यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल, हरियाणा, भारत
मो. 0184–4043026, 98964–33225
ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

प्राक्कथन

भारत देश प्राकृतिक सम्पदा से साधन सम्पन्न है, लेकिन तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या के लिए भोजन जुटाना एक बहुत बडी चुनौती बना हुआ है। कृषि से संबंधित प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, पानी, जलवायु तथा जैव विविधता आदि की गुणवत्ता में प्रतिदिन गिरावट हो रही है। मृदा एवं जल महत्त्वपूर्ण संसाधन है, इनके उचित उपयोग से आर्थिक, सामाजिक विकास की क्षमताओं को बढाया जा सकता है। खाद्य व पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हमें खाद्यान्नों की पैदावार में वृद्धि करने की नितान्त आवश्यकता है। कृषि की उचित वैज्ञानिक तकनीकों का इस्तेमाल तथा संसाधनों का तर्कसंगत उपयोग करके इस दिशा में सार्थक सफलता प्राप्त की जा सकती है। देश की बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुये जरूरी खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा के लिए कृषि अनुसंधान तथा तकनीकी विकास के हमारे वर्तमान दृष्टिकोण में एक व्यापक बदलाव लाने की जरूरत है। भारतीय कृषि के परिपेक्ष्य में अगर देखा जाय तो सिंचित कृषि ने इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया है, परन्तु देश के दूसरे क्षेत्रों में पानी के बढ़ती खपत की वजह से सिंचाई संसाधनों के घटने के कारण अच्छी गुणवत्ता के सिंचाई जल की उपलब्धता में निरन्तर कमी होती जा रही है। ऐसे क्षेत्रों में निम्न गुणवत्ता जल को उचित तकनीकी हस्तक्षेप द्वारा सिंचाई हेतु उपयोग में लाकर फसल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। जलभराव वाले क्षेत्रों में उचित जलनिकास तकनीक अपनाकर फसलोत्पादन बढ़ाने, जलमग्नता तथा लवणता जैसी समस्याओं को नियंत्रित करनें में सार्थक होगा। सतही तथा भूजल संसाधनों के प्रदूषण में प्राकृतिक एवं मानवजनित कारकों के फलस्वरूप तेजी से वृद्धि हुई है। भारत सरकार ने मृदा स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए संतुलित उर्वरक उपयोग पर टास्क फोर्स का गठन एक प्रमुख कदम है।

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप शरद व ग्रीष्म ऋतु के दौरान होने वाले अप्रत्याशित बदलाव से फसलों विशेषकर सब्जियों को बचाने के लिए उपलब्ध आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। इसके लिए पॉलीहाउस तकनीक का इस्तेमाल लाभदायक पाया गया है। भारत में इस तकनीक का प्रसार 30 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के साथ हो रहा है। आज यह समय की मांग है कि हमें कृषि में ऐसी पर्यावरण संवेदी तकनीकों को अपनाना होगा जिससे मृदा व जल संसाधनों की उत्पादकता को बरकरार रखते हुये किसानों के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सके। देश के समस्याग्रस्त क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तरों पर इनके सुधार के लिए कार्ययोजनाएं चलाई जा रही है। विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों व गैर शासकीय संगठनों (एनजीओ) के साथ मिलकर प्रभावी सुधार एवं प्रबंधन तकनीकें विकसित करने की दिशा में कार्य कर सफलता प्राप्त की जा सकती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के विभिन्न संस्थान विगत कई वर्षों से कृषि उत्पादन, मछली उत्पादन, पशुपालन के क्षेत्र में बहुआयामी शोध करके सफल तकनीकें विकसित करने में लगे हुये हैं। विकसित की गई इन तकनीकों द्वारा निम्न गुणवत्ता संसाधनों का उपयोग कर खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने तथा करोड़ों देशवासियों की आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की अच्छी संभावनाएं हैं।

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए कृषि किरण पत्रिका का वार्षिकांक 11 वर्ष 2018–19 प्रकाशित कर रहा है जिसमें उपरोक्त विषयों से संबंधित आलेख तथा विशेषज्ञों द्वारा प्रदत्त अन्य किसानोपयोगी जानकारी सम्मिलित की गई है। मैं उन संस्थानों, वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का आभारी हूँ जिनके अनुसंधान कार्यों एवं अनुभवों को इस पत्रिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका वैज्ञानिकों द्वारा विकसित तकनीकों एवं समस्याग्रस्त क्षेत्रों में सफल कृषि उत्पादन से संबंधित महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी को हिन्दी माध्यम से किसानों एवं कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचा कर देश के खाद्यान्न भण्डार में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण योगदान करेगी। कृषि किरण के संपादक मण्डल को राष्ट्रभाषा में किये इस प्रकाशन के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और कृषि किरण के इस सफलतम 11वें वार्षिक अंक की सफलता की कामना करता हूँ।

(प्रबोध चन्द्र शर्मा)

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका कृषि पर आधारित है। यद्यपि भारतीय कृषि की पिछले 56 वर्षों की यात्रा के दौरान खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग चार गुणा बढ़ा है किन्तु वास्तविकता यह है कि अब भी देश की एक चौथाई आबादी भूख या कुपोषण की समस्यायों से ग्रस्त है। खाद्यान्न उत्पादन के लिए कृषि की आवश्यकता है और कृषि के लिए मृदा एवं जल आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है। देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा हेतु आवश्यक जरूरतों को पूरा करने लिए निरन्तर सीमित हो रहे कृषि क्षेत्र एवं गुणवत्ता का जल सबसे बडी चुनौतियाँ है। औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण के विस्तार के कारण कृषि के लिए उपलब्ध उपजाऊ भूमि की उपलब्धता कम होती जा रही है साथ ही अच्छे जल की भी कमी होती जा रही है। निरन्तर बढ़ती जनसंख्या, घटती कृषि योग्य भूमि एवं अप्रत्याशित जलवायु परिवर्तन की स्थिति में दूसरी हरित क्रान्ति उपलब्ध भूमि एवं जल के कुशल उपयोग व बारानी क्षेत्र व निम्न गुणवत्ता जल के तकनीकी उपयोग द्वारा कृषि उत्पादन करने पर ही संभव हो सकती है।

हमारा देश का खाद्यान्न भण्डार एक सुरक्षित स्तर पर है परन्तु सीमित संसाधनों की उपलब्धता के कारण इसमें बढ़ोत्तरी करने की दिशा में किये जा रहे प्रयास उचित तकनीकी व वैज्ञानिक कृषि द्वारा ही संभव है। समाज के समुचित आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विषमता दूर कर ऐसे समाज की रचना करने की जरूरत है जो किसी भी प्रकार की विसंगति से परे हो और जहाँ सभी को समृद्धि के समान अवसर प्राप्त हों। किसी भी देश की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान उसकी सहज व सरल भाषा में उपलब्ध ज्ञान है। एक प्रगतिशील समाज के लिए उसकी भाषा में उपलब्ध प्रकाशन ही अभिव्यक्ति व ज्ञान ग्रहण करने का सशक्त माध्यम है, जिससे श्रेष्ठ विचारों का आदान–प्रदान होने से व्यक्तिगत विकास के साथ समाज व देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। समृद्ध देश की सबसे बडी पहचान उसका सभ्य और सुसंस्कारित समाज होता है। अपनी भाषा में सरल तरीके से प्रकाशित साहित्य द्वारा नवप्रवर्तक ज्ञान को हम रूचि एवं जागरूकता के साथ सीखने की कोशिश करते हैं।

हम अपने संस्थान की राजभाषा पत्रिका कृषि किरण के माध्यम से इन्हीं दायित्वों को पूरा करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। कृषि किरण का 11वाँ वार्षिक अंक प्रकाशित करते हुये हमें प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में वैज्ञानिकों व विषय विशेषज्ञों द्वारा राष्ट्रभाषा में लिखे गए आलेख सम्मिलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में संस्थान में आयोजित राजभाषा संबंधी कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी भी प्रस्तुत की गई है।

हम भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान तथा उन सभी संस्थाओं के वैज्ञानिकों, विषय विशेषज्ञों और लेखकों के आभारी हैं जिनके सहयोग से वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख और ज्ञानवर्धक साम्रगी इस अंक में प्रकाशित की गई है। हम संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा का सहर्ष आभार प्रकट करते हैं जिनके कुशल मार्गदर्शन में कृषि किरण के 11 वें वार्षिक अंक 2018–19 का प्रकाशन संभव हो सका है। हम आशा करतें हैं कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिन्दी से लगाव रखने वाले पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ संख्या
1	**लवणीय काली मृदाओं में अधिक उपज हेतु उन्नत फसलोत्पादन तकनीकियाँ** अनिल आर॰ चिंचमलातपुरे, श्रवण कुमार, सागर विभूते, डेविड केमस, इंदीवर प्रसाद एवं बिस्वेश्वर गोराईं	01
2	**क्षारीय भूमि के लिए मृदा सुधारकों का उचित उपयोग** अवतार सिंह, प्रियंका चंद्रा, मधु चौधरी, राजेन्द्र कुमार यादव, आराधना बाली एवं विजयता सिंह	10
3	**निम्न गुणवत्ता जल का कृषि में सिंचाई उपयोग हेतु सतत् प्रबंधन** प्रवेन्द्र श्योराण, कैलाश प्रजापत एवं रामेश्वर लाल मीणा	14
4	**उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा लवणीय एवं क्षारीय जल का सिंचाई प्रबंधन** गोविन्द मकराना, राजेन्द्र कुमार यादव, तारामणि यादव एवं राकेश कुमार	22
5	**भूजल पुनर्भरण द्वारा जल गुणवत्ता में सुधार** सत्येन्द्र कुमार एवं भास्कर नरजरी	28
6	**लवणग्रस्त मृदाओं के लिए धान, गेहूँ एवं सरसों की उन्नत प्रजातियाँ** सतीश कुमार सनवाल, अरविन्द कुमार एवं जोगेन्द्र सिंह	34
7	**लवणीय एवं क्षारीय भूमि के लिए जौ की लाभदायक उन्नत खेती** अजित सिंह खरब, विष्णु कुमार, दिनेश कुमार, अनिल खिप्पल, जोगिन्द्र सिंह, सुधीर कुमार, पूनम जसरोटिया, चुन्नीलाल एवं जी॰पी॰ सिंह	40
8	**लवणग्रस्त मृदाओं में आलू की उन्नत खेती** प्रवीण कुमार, कैलाश प्रजापत, अनिल कुमार, मनीष कुशवाहा एवं शिवानी चहल	46
9	**समन्वित कृषि प्रणाली द्वारा जलमग्न क्षारीय मृदा का प्रबंधन एवं किसानों की आय दोगुनी करने की एक सफल गाथा** विनय कुमार मिश्र, सुनील कुमार झा, यशपाल सिंह, टी॰ दामोदरन, सी॰एल॰ वर्मा, ए॰के॰ सिंह एवं संजय अरोडा	51
10	**लवणीय क्षेत्रों के लिए अनार–एक संभावित फसल** राजकुमार, अंशुमान सिंह एवं आर॰के॰ यादव	55
11	**लवणग्रस्त मृदाओं में सब्जियों की उन्नत खेती** सतीश कुमार सनवाल, गुरप्रीत कौर, अनिता मान एवं अश्विनी कुमार	61
12	**लवण सहनशील बारहमासी चारा हैलोफाइट** अश्वनी कुमार, अनिता मान, अरविंद कुमार, चारुलता, शोभा सोनी, पूजा एवं बाबू लाल मीणा	67
13	**तटीय लवणग्रस्त क्षेत्रों के प्रबंधन एवं आय बढ़ाने के लिए उन्नत तकनीकियाँ** डी॰ बरमन, एस॰के॰ सारंगी, एस॰ मंड़ल, के॰के॰ महंता, यू॰के॰ मंड़ल, टी॰ड़ी॰ लामा, एस॰ राउत एवं कैलाश प्रजापत	71

14 लवणग्रस्त मृदा एवं जल गुणवत्ता के मापदंड व सुधार की सिफारिशें 77

अजय कुमार भारद्वाज एवं राजेन्द्र कुमार यादव

15 मृदा एवं सिंचाई जल के नमूने लेने की उपयुक्त विधि 81

असीम दत्ता अरिजीत बर्मन एवं बाबू लाल मीणा

16 अंतःस्थलीय लवणीय मछली उत्पादन की संभावनाएं 85

डार जाफर युसुफ, राम किशोर फगोडिया एवं देवेन्द्र सिंह बुंदेला

17 मृदा एवं फसल प्रबंधन से करें जिंक जैव प्रबलीकृत अनाज उत्पादन 89

बी॰एल॰ मीणा, आर॰एल॰ मीणा, आर॰के॰ फगोडिया, एम॰जे॰ कलेढोणकर, ए॰ कुमार एवं पी॰ कुमार

18 फसल सुरक्षा में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन का महत्त्व 95

अंकुर राणा, पूनम जसरोटिया, प्रेम लाल कश्यप एवं सुधीर कुमार

19 लवणग्रस्त पारिस्थितिकी तंत्र में प्रक्षेत्र विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन–एक सफल गाथा 101

अनिता मान, प्रवेन्द्र श्योराण, बी॰एल॰ मीणा, अश्वनी कुमार एवं आर॰के॰ यादव

20 कविताएँ 105

यह संस्थान हमारा है – देशराज शर्मा

तिरंगा फहराई द पिया –कवि अवध बिहारी अवध

रक्षाबंधन की बधाइयाँ –कवि अवध बिहारी अवध

21 संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी 109

अनिल आर॰ चिंचमलातपुरे, श्रवण कुमार, सागर विभूते,
डेविड केमस, इंदीवर प्रसाद एवं बिस्वेश्वर गोराई
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरुच–392012 (गुजरात)
E-mail: rcanil2014@gmail.com

लवणीय काली मृदाओं में अधिक उपज हेतु उन्नत फसलोत्पादन तकनीकियाँ

मृदा एवं जल महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं, इनके उचित उपयोग से जीवन चक्र और लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की क्षमता निर्धारित होती है। खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने की हमारी क्षमता में मिट्टी और पानी की लवणता की वजह से बड़ी बाधा आती है। मृदा में लवणता का स्तर बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, खासतौर पर सिंचाई कमांड क्षेत्रों और तटीय क्षेत्रों में ज्यादा हो रहा है। लवणता की समस्या का मुख्य कारण तटीय क्षेत्र में समुद्री प्रभाव, समुद्री पानी का ज्वार, समुद्र तट से निकटता, ज्यादा लवणयुक्त भूजल का जलस्तर है। भारत में काली मृदा (वर्टीसोल) और इसके समान मृदाओं का क्षेत्रफल 74 मिलियन हैक्टर है जिसका 2.6 प्रतिशत अर्थात 1.87 मिलियन हैक्टर गुजरात में पाया जाता है। इन मृदाओं के कुछ विशेष गुणधर्म होते हैं। वर्टीसोल में अर्न्तनिहित जटिल भौतिक तथा रासायनिक गुणों जैसे कि खराब हाइड्रोलिक चालकता, काली मृदा में पानी प्रवेश की कम दर तथा मृतिका की अधिक मात्रा की वजह से इसका प्रबन्धन अत्यन्त कठिन होता है। इन मृदाओं में 40–70 प्रतिशत तक मृतिका की मात्रा होती है। इसमें जैविक कार्बन की मात्रा भी कम होती है। अधिक धनायन विनिमय क्षमता तथा सामान्यतः 2–12 प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनेट वाली चुनेदार मृदा होती है। इनमें अधिक फैलने तथा सिकुड़ने की प्रवृति के कारण 4–6 सेंमी. तक चौड़ी दरारें बन जाती है जिनकी गहराई 100 सेंमी. तक हो सकती है। उच्च जल धारण क्षमता, धीमी पारगम्यता तथा कम जलनिकास की क्षमता इन मृदाओं के कुछ अन्य विशेष गुणधर्म है। इन मृदाओं में कृषि कार्य करने हेतु योग्य नमी बहुत कम समय रहती है। इन मृदाओं में मध्यम तथा अधिक गहरी एवं चौड़ी दरारों का निर्माण होता है। इन जटिल समस्याओं के कारण काली मृदा में कम लवण की मात्रा से भी फसल उत्पादन में समस्या उत्पन्न होती है। भूमिगत जल की लवणता इस समस्या को और भी गम्भीर बना देती है। लवणीय काली मिट्टी में सोडियम क्लोराइड एवं सोडियम सल्फेट नमक होता है। धुलनशील धनायन में सोडियम की मात्रा ज्यादा होती है। इसके बाद मैग्नीशियम, कैल्शियम और पोटेशियम की मात्रा उपलब्ध होती है। पुरे भारत वर्ष में 6.73 मिलियन हैक्टर जमीन लवण प्रभावित है। इसमें 2.22 मिलियन हैक्टर भूमि गुजरात राज्य में स्थित है। सिंचाई परियोजनाओं और सिंचाई पानी का अवैज्ञानिक तरीके से उपयोग के कारण इस क्षेत्र में लवण की समस्या बढ़ रही है। काली मिट्टी की बात करें तो भारत में लगभग 11.0 लाख हैक्टर लवणीय काली मृदा है, जोकि गुजरात (1.20 लाख हैक्टर), महाराष्ट्र (2.0 लाख हैक्टर), कर्नाटक (3.0 लाख हैक्टर), आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडू एवं राजस्थान में पायी जाती है और इस काली मृदा में लवणता के कारण फसलोत्पादन कम हो रहा है। इसलिये लवणीय काली मृदा का वर्गीकरण एवं विस्तार का संकलन करना, इस तरह की जमीन में अच्छी फसल पाने के लिए कृषि प्रबंधन तकनीकियों का विकास करना और उन तकनीकियों को किसानों तक पहुँचाने के लिए प्रचार एवं प्रसार करने की आवश्यकता है।

गुजरात राज्य के भरुच में स्थित केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र द्वारा इस काली मिट्टी में लवणता एवं जलमग्नता से होने वाली समस्या के निवारण हेतु अनेक प्रयोग किये गये हैं और लगातार प्रयास जारी है। विविध तकनीकी का विकास किया गया है जोकि काली मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने हेतु कारगर साबित हो रहा है।

सामान्य तौर पर तीन प्रकार की लवणयुक्त मिट्टी पाई जाती है। जिस लवणयुक्त मिट्टी की वैद्युत चालकता (संतृप्त सार) 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक, पीएच मान 8.5 से कम और विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता 15 से कम है उस मिट्टी को लवणीय मृदा कहते हैं। जिस मृदा की वैद्युत् चालकता 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर से कम, पीएच मान 8.5 से अधिक और विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता 15 से अधिक है उस मृदा को क्षारीय मृदा कहते हैं। जिस मिट्टी की वैद्युत चालकता 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक, पीएच मान 8.5 से अधिक और विनियमयोग्य सोडियम प्रतिशतता 15 से अधिक है उस मृदा का वर्गीकरण लवणीय–क्षारीय मृदा के रूप में किया जाता है।

लवणीय काली मृदा में फसल की बढ़वार पर मुख्यतः तीन कारणों से प्रभाव पड़ता है। प्रथम तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है कि जैसे–जैसे मृदा में लवणों की मात्रा बढती है, मृदा जल का परासरण दबाव भी बढ़ता है। परासरण दबाव बढ़ने से पौधे पानी को आसानी से नहीं खींच पाते, जितनी आसानी से सामान्य मृदा से खींच सकते हैं। फलस्वरूप पानी मृदा में विद्यमान होने के बावजूद पौधों की पहुँच से बाहर हो जाता है। दुसरे कारणों में एक कारण यह भी है कि लवणों की अधिकता के कारण पौधों में एक या एक से अधिक तत्वों के अधिक अवशोषण से उनका पौधों में जमाव विषैले स्तर तक हो सकता है। जैसे कि सोडियम एवं क्लोराइड की अधिकता आदि। इसके अलावा एक ही तत्व की वृद्धि होने से दुसरे आवश्यक तत्वों के अवशोषण पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है जो पौधों की सामान्य बढवार पर असर डालता है। इस तरह की मृदा के सुधार हेतु लवणों का निक्षालन करना बहुत जरुरी है।

क्षारीय काली मृदा में विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता या बढ़ते पीएच मान के फलस्वरूप मृदा के भौतिक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप मृदा में हवा व पानी का आवागमन अवरुद्ध हो जाता है तथा फसलों की बढ़वार प्रभावित होती है। फसलों पर सोडियम की अधिकता का भी प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है। इसके कारण फसलें कुछ आवश्यक तत्वों का अवशोषण करने में असफल रहती है। इसलिए ऐसी मृदा में विनिमय स्थानों से सोडियम की मात्रा कम करने के लिए भूमि सुधारकों का प्रयोग किया जाता है।

लवणीय–क्षारीय काली मृदा के सुधार हेतु लवण निक्षालन प्रक्रिया एवं भूमि सुधारकों का प्रयोग दोनों की आवश्यकता होती है। इसके कारण मृदा सर्वेक्षण अधिकारी, विकास अधिकारी एवं योजनकारों के दिमाग में भ्रम पैदा होता है। इस समस्या को सुलझाने हेतु मृदा के संतृप्त सार की संरचना का परीक्षण करके लवणीय सुधार या क्षारीय सुधार तकनीकी अपनाने का पता लगता है। इसके लिए दो अनुपात का ध्यान देना जरूरी है।

जब $\frac{2Co_3+HCO_3}{Cl+2SO_4} > 1 \text{ mol/m}^3$ and/or $\frac{Na}{Cl+2SO_4} > 1 \text{ mol/m}^3$

तब इस प्रकार की मृदा में लवणीय मृदा सुधार तकनीक अपनानी चाहिए, चाहे इस मृदा का पीएच मान जो भी हो।

जब $\frac{2Co_3+HCO_3}{Cl+2SO_4} < 1 \text{ mol/m}^3$ and/or $\frac{Na}{Cl+2SO_4} < 1 \text{ mol/m}^3$

लवणयुक्त काली मिट्टी का क्षेत्रफल गुजरात राज्य में काफी अधिक है और इस काली मृदा में लवण/क्षार की मात्रा कम होने के बावजूद भी फसल उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इस लवणयुक्त काली मृदा का वर्गीकरण करने हेतु एक अध्ययन के माध्यम से विनियमयोग्य सोडियम प्रतिशतता की मात्रा में बदलाव किया गया है। जब काली मृदा की लवणता 2.0 डेसीसीमन्स/मीटर से कम और मृत्तिका की मात्रा ज्यादा हो तो इस प्रकार की काली मृदा में विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता 6 या 6 से ज्यादा होने पर ही इसे क्षारीय काली मृदा में वर्गीकृत किया जाता है।

गुजरात राज्य के प्राकृतिक संसाधन

दक्षिण गुजरात में गहरी काली मिट्टी और तटीय जलोढ़ मिट्टी प्रमुख रूप से पायी जाती है। मध्यम गहरी काली मिट्टी मध्य गुजरात एवं सौराष्ट्र में पायी जाती है। गुजरात राज्य के भाल क्षेत्र में उथली से मध्यम गहरी काली मिट्टी पायी जाती है और बहुत लवणीय होती है। गुजरात राज्य में अनेक प्रकार की जैव विविधता पायी जाती है, लेकिन इसके साथ–साथ विविध प्रकार का क्षरण/प्रदूषण हो रहा है। राज्य के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 33.5 प्रतिशत हिस्सा मिट्टी कटाव के विभिन्न स्तर से ग्रस्त है। लवण की समस्या, समुद्र के ज्वार का पानी भूमि में घुसना, भूजल के अत्यधिक निष्कर्षण की वजह से मृदा में लवणों की मात्रा बढ़ रही है।

वलसाड एवं सुरत जिलों में लवण प्रभावित काली मिट्टी पाई जाती है। इस काली मृदा की पारगम्यता बहुत कम आंकी गयी है। पीएच मान की मात्रा मृदा की सतह से नीचे गहराई तक बढ़ी हुई पायी गयी है और मिट्टी क्षारीयता से प्रभावित है। कुछ–कुछ जगहों पर लवणों की मात्रा मृदा की सतह पर पाई गयी है। भरुच जिले में भी काली मिट्टी पायी गयी है। इस काली मृदा का पीएच मान 8.6 से 9.5 तक पाया गया और लवणता की मात्रा 0.2 से 8.1 डेसीसीमन्स/मीटर तक आंकी गयी है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरुच द्वारा गुजरात राज्य के बारा क्षेत्र (21° 40'–22°13'उत्तर एवं 72° 32'–72°55' पूर्व) जोकि आमोद, जंबुसर एवं वागरा तालुका में स्थित है, यहाँ की काली एवं अन्य मिट्टी का अध्ययन किया गया। विविध प्राकृतिक संसाधन का अभ्यास करके एक डेटाबेस तैयार किया गया है। विशेषरूप से यह पाया गया है कि इस मिट्टी में धुलनशील लवणों की मात्रा सतह से 50–60 सेंमी. की गहराई में पायी गयी जबकि सतह पर लवणता की मात्रा 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर से कम पायी गयी। इस तरह की लवणता की स्थिति में फसल प्रबंधन एवं सिंचाई प्रबंधन बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि सतह के निचले स्तर की लवणता सतह पर आने से रोकना आवश्यक है।

फसलोत्पादन एवं काली मिट्टी की उत्पादन क्षमता बढाने हेतु हस्तक्षेप एवं प्रबंधन

अनुपयुक्त जलवायु परिस्थिति, मृदा एवं पानी की गुणवत्ता में कमी, तटीय क्षेत्रों में समुद्री प्रभाव और सिंचाई कमांड क्षेत्रों में होने वाली मृदा लवणता के कारण कृषि के लिए उपयुक्त भूमि की उपलब्धता कम हो रही है। ऐसी समस्याओं का समाधान करने के लिए नई तकनीकी का विकास करके लवणयुक्त भूमि की उत्पादक क्षमता बढाने का प्रयास हो रहा है। हालांकि जलवायु एवं भूमि उपयोग विसंगतियों के कारण नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसकी वजह से लवणयुक्त क्षेत्रों में वृद्धि हो रही है। यह पूर्णतः स्थापित है कि मृदा लवणता एवं क्षारीयता के बढ़ने से पौधों की वृद्धि प्रतिबंधित या पूरी तरह रुक जाती है। ऐसी लवणीय एवं क्षारीय भूमि की उत्पादकता बहाल करने हेतु मिट्टी लवणीय होने की प्रक्रिया को उलट कर देना चहिये या विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता की निर्माण प्रक्रिया को उलट कर देना चाहिये। ऐसा करने के लिए काली मृदा में पर्याप्त जलनिकास का प्रावधान, विनिमययोग्य सोडियम को मृदा विनिमय स्थानों से प्रतिस्थापन करना, धुलनशील लवणों को जड़ क्षेत्र से बाहर करना, लवण सहिष्णु किस्मों का उपयोग

करना, हेलोफाईट पौधों की खेती करना, जैव लवणीय खेती करना इत्यादि का प्रयोग करके इन लवणीय–क्षारीय काली मृदा की उत्पादकता में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है और अधिक उपज एवं आय प्राप्त कर सकते हैं।

लवण प्रभावित काली मृदाओं जोकि गुजरात के बारा क्षेत्र में पायी जाती है, पर विभिन्न फसलों के लिए मृदा–स्थल उपयुक्तता वर्गीकरण किया गया है और इष्टतम फसल उत्पादन को सीमित करने वाले बाधाओं/मानकों की पहचान की गयी है। भूमि मुल्यांकन और भूमि उपयोग नियोजन भी किया गया है।

काली मृदा में नहर सिंचाई की वजह से लवणता एवं क्षारीयता उत्पन्न होने की संभावना होती है। गुजरात राज्य के बारा क्षेत्र के किसान सिंचाई के लिए नहर एवं नलकुप के पानी का उपयोग कर रहे हैं। बारा क्षेत्र में उपसतही लवणता पायी गयी है। इस केन्द्र पर किये अध्ययन में यह पाया गया कि नहरी पानी का उपयोग ज्यादा मात्रा में किया गया तो लवणीय काली मृदा में निम्नलिखित परिवर्तन दिखाई दिये।

- काली मृदा सतह पर बहुत सख्त होना।
- मिट्टी का घनत्त्व ज्यादा होना।
- मिट्टी की हाइड्रोलिक चालकता में कमी आना।
- काली मृदा के उपसतही स्तरों में विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता का बढना पाया गया। जिससे लवणीय काली मृदा, क्षारीय काली मृदा में परिवर्तित हो जाएगी, जिसका सुधार करना बहुत कठिन हो जायेगा।

इसलिए इस क्षेत्र के किसानों को यह सलाह दी जाती है कि इस काली मिट्टी में कम पानी की लागत वाली फसलों की खेती करें एवं नहरी पानी का आवश्यकतानुसार ही उपयोग करें।

लवणीय काली मृदा में समेकित खेती प्रणाली

इन क्षेत्रों में एकल फसल प्रणाली मुख्य रूप से अपनाई जाती है लेकिन मृदा एवं पानी की समस्या के कारण उत्पादकता में कमी आती है। इन क्षेत्रों की उत्पादकता बढाने हेतु एवं कृषक की निरंतर आय का स्त्रोत बनने हेतु समेकित कृषि प्रणाली एक विकल्प बनता है, जिसमें फसल, फलों के वृक्ष, सब्जियाँ, बहुउद्देशीय पेडों जैसे विविध फसलों की खेती करना होता है। समेकित खेती ख़राब जलवायु स्थितियों के कारण होने वाले नुकसान को संतुलित करती है। बारा क्षेत्र के किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर है और उत्पादन से मिलने वाली आय भी कम और असुरक्षित है। इसलिए इस क्षेत्र की लवणीय काली मृदा एवं लवणीय जल से लाभान्वित खेती करने के लिए उचित तकनीकी हस्तक्षेप का विकास करना बेहद महत्वपूर्ण है। लवणीय काली मृदा क्षेत्र के लिए एक एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किया गया है। जिसमें फसल, फल, पेड़, सब्जी, और खेत तालाब शामिल है। तालिका 1 में दिए गए आंकडे अनुसार केले की फसल को ज्यादा सिंचाई पानी की मात्रा (953 मिमी) दी गयी जबकि पपीता की फसल को केवल 180 मिमी दी गयी। बीज मसाले वाली फसलों में अगर तुलना करते हैं तो अजवाईन को सबसे कम मात्रा में पानी (44 मिमी) दिया गया, इसके बाद सुवा फसल को (100 मिमी) और धनिया को (122 मिमी)। इसी प्रकार सब्जियों में लौकी को 134 मिमी, टमाटर को 110 मिमी और बेंगन को 200 मिमी। इस लवणीय काली मिट्टी में केले जैसी उच्च पैदावार वाली फसलों की जल उत्पादकता (0.931 किग्रा प्रति घन मीटर) सबसे कम है जबकि पपीता की जल उत्पादकता (3.62 किग्रा प्रति घन मीटर) सबसे ज्यादा है। मसाले एवं सब्जी फसलें, जिसे पानी की आवश्यकता कम होती है उन फसलों की उत्पादकता केले की फसल की तुलना में उच्चतम पायी गयी। इस तरह के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि लवणीय काली मृदा में पानी की कम आवश्यकता वाली फसलों को उगाने से लाभदायक खेती कर सकते हैं जिससे प्राकृतिक संसाधनों की क्षति में कमी आती है।

तालिका 1. समेकित कृषि प्रणाली के अंतर्गत विविध फसलों की जल उत्पादकता एवं लाभःलागत अनुपात

घटक	फल		मसाला फसलें			सब्जी फसलें		
	केला	पपीता	अजवाईन	सुवा	धनिया	बैंगन	टमाटर	लौकी
क्षेत्रफल, वर्ग मीटर	190	225	480	1200	1600	120	160	200
पानी की मात्रा, मिमी	953	180	44	100	122	200	110	134
जल उत्पादकता, किग्रा./धन मीटर	0.931	3.62	0.91	1.06	0.951	2.33	2.18	3.28
जल उत्पादकता, रुपये/धन मीटर	3.58	19.25	72.70	31.60	33.28	18.70	12.20	17.60
लागत मुल्य, रुपये	1590	1450	620	740	1120	500	280	560
कुल आय, रुपये	5002	4916	3200	3180	5180	2240	1440	3520
शुद्ध आय, रुपये	3412	3466	2580	2240	4060	1740	1160	2960
लाभःलागत अनुपात	2.15	2.39	4.16	4.33	3.63	3.48	4.14	5.28

कुल आय, रुपये प्रति हैक्टरः 52258–00 (उचित प्रबंधन स्थिति में)

लवणीय काली मृदा में कपास की खेती

कपास जिसे रेशों का राजा भी कहा जाता है, मानव सभ्यता के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से भारत का कपास उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान है। नवीनतम अनुमानों के अनुसार 2016–17 के दौरान भारत में कुल 105 लाख हैक्टर भूमि में 351 लाख कपास की गांठों (एक गांठ 170 किग्रा.) का उत्पादन हुआ। इस दौरान कपास की उत्पादकता 568 किलोग्राम लिंट प्रति हैक्टर रही। गुजरात में सालाना 101–108 लाख कपास की गांठों का उत्पादन होता है जो पूरे भारतवर्ष में सर्वाधिक है। कपास के क्षेत्रफल की दृष्टि से गुजरात का महाराष्ट्र के बाद दूसरा स्थान है। गुजरात में कपास की उत्पादकता लगभग 700 किलोग्राम/हैक्टर है। हालांकि कपास को लवण सहनशील फसलों की श्रेणी में शामिल किया गया है परन्तु उच्च लवणता के स्तरों पर इसके पौध विकास और उत्पादन में भारी कमी होती है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरुच द्वारा लवणीय काली मृदा में कपास की देसी तथा अमेरिकन संकर प्रजातियों पर लवणता के प्रभाव हेतु अनेक शोध किए गए। इन शोधों से यह पता चला कि लवणीय काली मृदाओं में अमेरिकन संकर प्रजातियों की तुलना में देसी कपास की प्रजातियों की लवण सहनशीलता अधिक होती है। देसी कपास की प्रजातियां 10.4 डेसीसीमन्स/मीटर लवणता के स्तर पर भी अच्छा उत्पादन देती है जबकि इन उच्च लवणता के स्तरों पर बीटी संकर तथा अमेरिकन प्रजातियों की उपज में भारी कमी होती है। उच्च लवणता के स्तरों पर बीटी संकर तथा अमेरिकन प्रजातियों में पर्णहरित की मात्रा कम होने के कारण ऊतकों में सोडियम आयन की सहनशीलता कम हो जाती है जो इन प्रजातियों में कम जैव भार तथा उपज का मुख्य कारण है। यद्यपि देसी कपास की प्रजातियों में सोडियम की मात्रा अमेरिकन प्रजातियों की तुलना में कम पाई गई लेकिन अधिक मात्रा में पोटेशियम आयन के अवशोषण के कारण देसी कपास की प्रजातियों में सोडियमःपोटेशियम का अनुपात कम होता है जिसके कारण देसी प्रजातियां लवण सहनशील होती हैं। उच्च लवणता वाले क्षेत्रों में किसानों के खेतों पर किए गए प्रयोगों में समान परिणाम पाए गए। इससे यह पता चलता है कि लवणीय काली मृदाओं में देसी कपास के विस्तार की अपार संभावनाएं हैं। *आर्बोरियम* तथा *हर्बेसियम* प्रजातियों की जल उत्पादकता भी अधिक होती है जिसके कारण यह कम पानी अथवा वर्षा

आधारित खेती के लिए भी उपयुक्त होती है। क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरुच द्वारा देसी कपास की खेती को बढ़ावा देने के लिए विगत वर्षों में कई कार्यक्रम किये गए हैं। देशी कपास की कुछ उन्नत प्रजातियाँ इस प्रकार है – जी कॉट 23, जी कॉट 25, जी कॉट डीएच–7, जी कॉट डीएच–9, डीएच–5, एचडी–107, आरजी–8, जी–27, श्यामली, लोहित, एलडी–230, एलडी–327, एलडी–133, डीएच–21, एलडी–491 है। इनके रेशे और संबंधित गुणधर्म सर्जिकल कपास के लिए एकदम उपयुक्त हैं। लवणीय काली मृदा में देसी कपास के अधिक उत्पादन के लिए बीज की अच्छी किस्म से लेकर बिजाई के खास तरीके और समय–समय पर वैज्ञानिक सलाह अति आवश्यक है।

लवणीय काली मृदा में गेहूँ की खेती

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरुच ने गेहूँ की लवण सहनशील प्रजातियों केआरएल 210 एवं केआरएल 19 का लवणीय काली मृदा वाले क्षेत्रों में विभिन्न एनजीओ भागीदारों, सीएसपीसी अहमदाबाद, केवीके, चासवाड द्वारा अच्छा प्रचार एवं प्रसार करते हुये किसानों के खेतों पर क्षेत्र प्रदर्शन किये और अच्छा उत्पादन पाया गया। केआरएल 210 एक मध्यम बौनी किस्म है। यह लगभग 143 दिन में पक जाती है। इसके दानों का आकार मध्यम मोटा एवं रंग गेहुंआ है। इस किस्म के गेहूँ के दाने अच्छे आकार के होते हैं एवं इनमें प्रोटीन की मात्रा लगभग 11 प्रतिशत होती है। यह किस्म 6.5 डेसीसीमन्स/मीटर तक की लवणता एवं 9.3 पीएच मान की ऊसरता को सहन कर सकती है। इस प्रजाति को लवणीय काली मृदा वाले क्षेत्रों की लवणग्रस्त भूमियों में उगाया जा सकता है। लवणग्रस्त भूमियों में यह प्रजाति औसतन 35 (27–37) कुंटल/हैक्टर तक उपज दे सकती है। गेहूँ की लवण सहनशील प्रजातियों की खेती से किसानों की आय बढ सकती है। आर्थिक विश्लेषण से पता चला कि गेहूँ की खेती की कुल लागत 23078 रुपये/हैक्टर है। गेहूँ की अन्य किस्मों की तुलना में गेहूँ की इन लवण सहनशील प्रजातियों को कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। किसानों के खेतों से प्राप्त गेहूँ की औसत उपज 30 कुंटल/हैक्टर मिली। लाभःलागत अनुपात 2.3 रहा। गेहूँ की इन लवण सहनशील प्रजातियों के लिये किसानों की मांग बढ रही है। गेहूँ की इन लवण सहनशील प्रजातियों का बीज पिछले चार वर्षों से लवणीय काली मृदा वाले क्षेत्रों के किसानों को क्षेत्र प्रदर्शन के लिए वितरित किया जा रहा है और यह आंकलन किया गया कि लगभग 25000 हैक्टर लवणीय काली मृदा वाले क्षेत्रों में गेहूँ की लवण सहनशील प्रजाति केआरएल 210 की खेती हो रही है और यह क्षेत्रफल बढने की संभावना है। क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरुच के प्रायोगिक प्रक्षेत्र, समनी पर गेहूँ की नई लवण सहनशील किस्में विकसित करने का प्रयास जारी है। लवणीय जल की सिंचाई के साथ 10 एवं 12 किस्मों के दो परीक्षण किये गये, जिसमें केआरएल 243, केआरएल 351, केआरएल 378 एवं एनडब्लू 6096 अच्छी किस्में पायी गयी। अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ सुधार परियोजना के तहत किस्म केआरएल 370 लवण सहनशील पायी गयी जो कि 8.5 डेसीसीमन्स/मीटर मृदा लवणता के स्तर पर 9–11 डेसीसीमन्स/मीटर लवणीय सिंचाई जल के साथ 38.8 कुंटल/हैक्टर तक उत्पादन देती है।

लवणीय काली मृदा में सुवा की खेती

लवणग्रस्त काली मृदा में सुवा (डिल) की खेती करने की विधि विकसित की गई जिससे किसान अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। इस फसल का पत्तेदार सब्जी, मसाले एवं खुशबूदार तेल के रूप में बहुत उपयोगी होता है। सुवा की फसल 4–6 डेसीसीमन्स/मीटर संतृप्त वैद्युत चालकता की लवणीय काली मृदा में अच्छा उत्पादन देती है। एक अध्ययन में यह पाया गया कि लवणीय सिंचाई जल के साथ लवणीय काली मृदा में इस फसल का उत्पादन 7.5 कुंटल/हैक्टर और शुद्ध लाभ 16500 रुपये/हैक्टर होता है। 6000 रुपये/हैक्टर की लागत आती है और लाभःलागत अनुपात 2.75 मिला है।

लवणीय काली मृदाओं में अमरूद की खेती

अमरूद भारत के लवणीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाली प्रमुख फल फसलों में से एक है। गुजरात के बारा क्षेत्र में पायी जाने वाली लवणीय काली मृदाओं में किसान अमरूद की खेती कर रहे हैं, लेकिन उचित प्रबंधन नहीं करने से उत्पादन में कमी आती है। बारा क्षेत्र में पायी जाने वाली लवणीय काली मृदाओं में नत्रजन की मात्रा, लवणीय जल सिंचाई और अमरूद की किस्म इलाहाबाद सफेदा पर प्रबंधन प्रणालियों (छंटाई आदि) के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए एक प्रयोग किया गया। अध्ययन में पाया गया कि लवणीय काली मृदा में जहाँ अच्छी गुणवत्ता वाले जल की कमी है, लवणीय सिंचाई जल (4 डेसी./मी. तक) को अमरूद की उपज प्रभावित किए बिना इस्तेमाल किया जा सकता है। इस लवणीय काली मृदा में अमरूद की बेहतर उत्पादकता के लिए, नत्रजन (750 ग्राम/पेड/वर्ष दो खुराक में) के साथ 25 प्रतिशत छंटाई और लवणीय जल (4 डेसी./मी.) सिंचाई की सिफारिश की है जिसकी उपज 45.71 कुंटल/हैक्टर प्राप्त हुई।

लवणीय काली मृदा में चारा घास की खेती

लवणग्रस्त काली मृदाओं में उत्पन्न होने वाली चारा घास (*डाईकेन्थियम, एल्युरैंपस, इराग्रैंस्टिस*) की विभिन्न किस्मों की पहचान कर सूचीबद्ध किया गया। इन चारा घास की लवण सहनशीलता की जाँच करने के पश्चात् इनमें मौजूद गुणों को देखते हुए लवणग्रस्त मृदाओं में इन्हें वैकल्पिक तौर पर अपनाने की सिफारिश की गई। मध्यम लवणीय काली मृदाओं (वैद्युत चालकता 6–10 डेसी./मी.) में चारा घास अच्छी तरह से ले सकते हैं। पशुघन की अधिक आबादी वाले क्षेत्रों के लिए लवणतायुक्त मृदा में उगने वाली सहनशील चारा घासों की पहचान कर उसके अधिकतम उत्पादन हेतु सफल परीक्षण किये गये। प्रजातियाँ जैसे जिंजवो (*डाइकेन्थियम एनुलेटम*), कल्लर घास (*लैप्टोक्लोआ फुस्का*), कलावो (*इराग्रोस्टिस स्पी गीज*), खारीयु (*एल्युरोपस लेगोपोइडस*), *इकाइनोक्लोआ क्रसगल्ली* और *पेन्नीसेटम परपूरीयम* का चयन किया गया है।

लवणीय काली मृदा में हेलोफाईट की खेती

लवणयुक्त काली मृदा में अधिक लवणता एवं पोषक तत्वों की कमी और अनियमित वर्षा के कारण लाभदायक खेती प्रबंधन में समस्याएं आती है। इस प्रकार की लवणयुक्त काली मृदा को उपजाऊ बनाने हेतू हेलोफाईट की खेती करना एक वैकल्पिक उपाय हो सकता है। झाक (*साल्वाडोरा पर्सिका*) एक

अधिकतम लवण/क्षार को सहन करने वाली हेलोफाईट प्रजाति है। अधिक लवणयुक्त काली मृदा में इसकी खेती करने की उपयुक्त कृषि तकनीकी निर्माण करने का प्रयत्न किया गया है। झाक (*साल्वाडोरा पर्सिका*) का बीज अखाद्य तेल का स्त्रोत है जिसमें सी–12 और सी–13 वसीय अम्ल भरपुर हैं, जो साबुन और डिटर्जेंट में उपयोग किया जाता है। इस प्रजाति की विशेषता अत्यधिक खारापन सहनशीलता है। झाक बिना लवणता से अधिक लवणता व जलमग्न/दलदली क्षेत्रों व रेगिस्तान में भी उगायी जाती है। इस प्रजाति के साथ लवणीय/बंजर भूमि को खेती के उपयुक्त बनाने के लिए एक मोडल योजना क्षेत्रीय केन्द्र, भरुच द्वारा राष्ट्रीय कृषि व ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के सहयोग से तैयार की गयी है।

देसी कपास आधारित फसल प्रणाली में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

बारा क्षेत्र के कृषि व्यवसाय में निरंतर एक ही फसल चक्र को अपनाने से बहुत जोखिम है। कपास की पैदावार में कमी/ठहराव का कारण अनियमित वर्षा, मृदा लवणता, लवणीय भूजल, उर्वरता शक्ति में कमी, एक ही फसल चक्र (मृदा उर्वराशक्ति का ह्रास, कीडों–मकोडों एवं रोगों का प्रकोप) एवं फसल का अनुचित प्रबंधन है। इसलिए जोखिम को कम करने के लिए फसल विविधीकरण अति आवश्यक है, जिसमें वैकल्पिक फसल पद्धति और प्रबंधन प्रणाली जैसे दोहरी–फसल पद्धति, फसलों का आवर्तन करने से फायदेमंद साबित हो सकता है। कपास के एक ही फसल आवर्तन प्रणाली में कुछ अन्य फसलों का समावेश किए जाने के उद्देश्य से तथा फसल की अधिकतम पैदावार लेने के लिये एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन योजना {रासायनिक एवं जैविक खाद जैसे कूडे कचरे (अपशिष्ट) से निर्मित खाद एवं जिंक सूक्ष्म तत्व, ऐजोटोबैक्टर एवं राइजोबियम कल्चर का उपयोग} के तहत अनुसंधान किया जा रहा है। जिसमें तीन कपास–आधारित फसल प्रणाली (कपास एकल फसल, कपास–ज्वार–गेहूँ एवं कपास–अरहर–गेहूँ) को दो साल के फसली आवर्तन के साथ लिया जा रहा है।

देसी कपास जीनोटाइप का संवर्धन

लवण प्रभावित मृदा के सुधार एवं प्रबंधन हेतु लवण सहिष्णु फसलों और उनकी किस्मों का चयन सबसे उपयुक्त माना गया है। देशी कपास की विभिन्न जीनोटाइप का प्रायोगिक फार्म पर लवणग्रस्त काली मृदा में संवर्धन/विकास के लिए प्रजनन एवं इनके मूल्यांकन के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। अखिल भारतीय समन्वित कपास सुधार परियोजना के अंतर्गत दो राष्ट्रीय परीक्षण (परीक्षण संख्या 32 बी (*गोसिपियम*

हर्बेसियम की आईईटी) एवं 22 बी (*गोसिपियम आर्बोरियम* की आईईटी) लिए गए हैं। इसके अलावा विभिन्न प्रकार की देशी कपास के जीनोटाइप का भी संवर्धन किया जा रहा है।

लवणीय काली मृदा में उपसतही जलनिकास प्रणाली

सिंचाई का विकास कृषि खाद्यान्न उत्पादन में भारत देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिये काफी हद तक जिम्मेदार है, लेकिन जलनिकासी को सिंचाई जितना महत्त्व नहीं दिया गया और इसलिए सिंचित कृषि में जलाक्रान्ति एवं लवणता की समस्या बढती जा रही है, कृषि उत्पादन में कमी आ रही है और भूमि की उत्पादकता प्रभावित हो रही है जिसके कारण छोटे एवं सीमान्त किसानों की आजीविका की सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा हो रहा है। खास तौर पर देखा जाए तो नहरी क्षेत्रों में लवणता एवं जलाक्रान्ति की समस्या का असर कृषि उत्पादन व उत्पादकता पर हो रहा है। देश के काली मृदा क्षेत्रों में करीब 11.0 लाख हैक्टर से अधिक जमीन लवणता की समस्याओं से ग्रस्त हैं, जिसके लिये उचित तकनीकी उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। उपसतही जलनिकास तकनीकी का उपयोग इन समस्याग्रस्त काली मृदा के क्षेत्रों में करने से लाभ हो सकता है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा इस प्रकार की मृदाओं के सुधार के लिये भूमिगत/उपसतही जलनिकास तकनीकी बनाई गयी है, जिससे जलाक्रान्त लवणीय काली मृदाओं में सुधार आता है। इन मुद्दों को ध्यान में रखते हुये गुजरात के सुरत जिले के मुलंद गाँव में लवणता और जलाक्रान्त समस्या से प्रभावित 45 हैक्टर क्षेत्र में एक अध्ययन किया गया। इससे यह पता चला कि उपसतही जलनिकास एक प्रभावी तकनीकी है जिससे जलाक्रांत लवणीय काली मृदा में सुधार आया है। गन्ना फसल की पैदावार में वृद्वि हुई, मृदा के भौतिक एवं रसायनिक गुणधर्म में सुधार हुआ। इसमें उपसतही जलनिकासी के छिद्रयुक्त पाईप 30 मीटर की दूरी पर 1.3 से 1.5 मीटर की गहराई में लगाये गये और इसका परिणाम बहुत ही उत्साहजनक रहा, जिससे गन्ने का उत्पादन जलनिकासी पूर्व की स्थिति में औसतन 40 टन प्रति हैक्टर से बढकर जलनिकासी के बाद औसतन 96 टन प्रति हैक्टर हो गया, जिससे किसानों की आय में बढोत्तरी हुई। इस तरह उपसतही जलनिकासी प्रणाली न केवल तकनीकी रूप से कारगर है बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी स्वीकार्य है। हालांकि बडे पैमाने पर यह परियोजना लगाने पर लवणीय जलनिकासी पर्यावरणीय चिंता का विषय भी है, इसलिये उपसतही जलनिकास प्रणाली के डिजाईन और लेआउट को स्वीकृति देने के साथ–साथ न्यूनतम पर्यावरणीय प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिये ऐसी परियोजनाओं की निगरानी और प्रभाव आंकलन के लिये तकनीकी संस्थान की भागीदारी बहुत आवश्यक है।

समाप्त

⌘ स्वयं पर विजय प्राप्त कर लेना सबसे श्रेष्ठ और महानतम विजय होती है। ⌘

अवतार सिंह, प्रियंका चंद्रा, मधु चौधरी,
राजेन्द्र कुमार यादव, अराधना बाली एवं विजयता सिंह
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: singhawtar91@gmail.com

क्षारीय भूमि के लिए मृदा सुधारकों का उचित उपयोग

भारत में 6.74 मिलियन हैक्टर मृदाएं लवणग्रस्त हैं, जिसमें लगभग 56 प्रतिशत क्षारीय तथा 44 प्रतिशत लवणीय मृदाएं हैं। भारत में इन मृदाओं का विस्तार कई राज्यों में है। ऐसी मृदाएं जिनका पीएच मान 8.2 से अधिक, विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत 15 से अधिक, सोडियम अधिशोषण अनुपात 13 से अधिक तथा वैद्युत चालकता 4 डेसीसीमंस प्रति मीटर से कम होती है, क्षारीय मृदाएं कहलाती हैं। क्षारीय मृदाओं में वर्षा अथवा सिंचाई करने के बाद इनकी सतह उथली हो जाती है। कई बार मृदा की सतह के कुछ सेंमी. नीचे काफी अधिक मात्रा में नमी होती है जबकि ऊपरी सतह पूरी तरह से सूखी तथा कठोर दिखाई पड़ती है। इन मृदाओं के अधिक सूखने पर इनमें 1–2 सेंमी. चौड़ी तथा कई सेंमी. गहरी दरारें पड़ जाती है। सूखने पर यह दरारें ज्यादातर उसी स्थान पर पड़ती है, जब तक कि उनमें कोई भू–परिष्करण की क्रिया ना की जाये।

क्षारीय मृदाओं का स्वास्थ्य

क्षारीय मृदाओ में सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम बाईकार्बोनेट की अधिकता के कारण इसकी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियायें निम्नलिखित तरीकों से प्रभावित होती है:

- सोडियम आयन की अधिकता की वजह से मृदा में उपस्थित क्ले का परिक्षेपण हो जाता है, जिसके फलस्वरूप मृदा सरंचना टूट जाती है तथा मृदा रन्ध्र बंद हो जाते हैं और पानी का रिसाव रुक जाता है।
- क्षारीय मृदाओं में पीएच मान बढ़ जाने के कारण जस्ता, लौहा, मैंगनीज तथा ताबें की उपलब्धता पौधों के लिये कम होने लगती है, जिससे पौधों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- मृदा सरंचना खराब हो जाने के कारण मृदा में जल तथा वायु का प्रवाह कम हो जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा पौधों के लिये पोषक तत्वों की उपलब्धता भी कम हो जाती है।
- क्षारीय मृदाओं में मुख्यतः जैविक कार्बन तथा नाइट्रोजन की कमी पायी जाती है, जिसके फलस्वरूप क्षारीय मृदाओं में सुक्ष्मजीवीय जैवभार कार्बन की मात्रा तथा डीहाइड्रोजिनेज एंजाइम की क्रिया भी कम हो जाती है, जोकि मृदा स्वास्थ्य के जैविक सूचक माने जाते हैं।

मृदा सुधारक

क्षारीय भूमियों को सुधारने का मुख्य सिद्धांत यह है कि सोडियम तत्व का जड़ क्षेत्र से निक्षालन करना तथा जल के रिसाव को बढ़ाना जिससे फसलों का उत्पादन लिया जा सके। इसके लिये वैज्ञानिकों द्वारा कई शोध किये गए तथा कई मृदा सुधारकों की संस्तुति की गई, जोकि निम्न प्रकार है।

(क) रासायनिक मृदा सुधारक

जिप्समः जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट डाईहाइड्रेट) का उपयोग क्षारीय भूमियों को सुधारने के लिए काफी संतोषजनक रहा है। जिप्सम के प्रयोग से मृदा में विनिमययोग्य कैल्शियम की मात्रा बढ़ती है जोकि मृदा विनिमय मिश्रण से अतिरिक्त सोडियम को हटा देता है। इस अतिरिक्त सोडियम को खेत में पानी भरकर निक्षालन करवा दिया जाता है। यद्यपि जिप्सम डालने की सही मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि उस मृदा में विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत की मात्रा कितनी है तथा किस गहराई तक सुधार करना है। सामान्यतः 10–15 टन जिप्सम/हैक्टर क्षारीय मृदा के सुधार के लिये पर्याप्त होता है। जिसके बाद धान–गेहूँ की फसल ली जा सकती है।

पाइराइटः पाइराइट (आयरन सल्फाइड) को गोबर की खाद के साथ मिलाकर प्रयोग करने से यह मृदा की विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत तथा पीएच मान को कम करता है। जिसके फलस्वरूप मृदा के स्वास्थ्य में सुधार होता है। पाइराइट में उपस्थित गंधक, ऑक्सीकरण के पश्चात् गंधक अम्ल में परिवर्तित हो जाता है और यह गंधक अम्ल विनिमययोग्य सोडियम को प्रतिस्थापित करने में मदद करता है। गंधक के ऑक्सीकरण में जीवाणु महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु मृदा में ज्यादा पीएच मान होने की वजह से यह अभिक्रिया आसानी से नहीं हो पाती है। जिसकी वजह से क्षारीय भूमियों के सुधार के लिये पाइराइट का उपयोग, जिप्सम के मुकाबले कम होता है।

लवणग्रस्त भूमियाँ

(ख) औद्योगिक उपजात मृदा सुधारक

फॉस्फोजिप्सम: जब रॉक फॉस्फेट से फॉस्फोरिक अम्ल का उत्पादन करते हैं तब एक अम्लीय उपजात बनता है जिसे फॉस्फोजिप्सम कहते हैं। फॉस्फोजिप्सम में कुछ मात्रा में पोषक तत्व तथा भारी धातुएं भी पाई जाती हैं। यह कैल्शियम तथा गंधक की उपलब्धता को पौधों के लिये बढ़ाता है। फॉस्फोजिप्सम के प्रयोग से क्षारीय भूमियों के पीएच मान तथा विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत में कमी आती है तथा मृदा में जल रिसाव बढ़ता है, जिसके फलस्वरूप मृदा स्वास्थ्य में सुधार एवं फसलोत्पादन में वृद्धि होती है।

डिस्टिलरी स्पेंट वाश: एल्कोहल उत्पादन के समय बेकार एवं बचा हुआ तरलीय पदार्थ स्पेंट वाश कहलाता है। स्पेंट वाश को सीधे नदी या नालियों में बहाने से यह पर्यावरण के लिये घातक सिद्ध हो सकता है। कई प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि डिस्टिलरी स्पेंट वाश को गोबर की खाद तथा फसल अवशेषों के साथ मिलाकर क्षारीय मृदा में उपयोग करने से यह मृदा में कार्बन तथा अन्य पोषक तत्वों की मात्रा और एंजाइमों की क्रिया को भी बढ़ाता है। इसके अलावा स्पेंट वाश के उपयोग से क्षारीय मृदाओ में जलीय चालकता में भी सुधार होता है ।

प्रेसमड: प्रेसमड चीनी मिलों से प्राप्त होने वाला एक उप उत्पाद है, जिसमें कार्बन तथा अन्य पोषक तत्व पाये जाते हैं। प्रेसमड के उपयोग से क्षारीय मृदाओं के स्वास्थ्य में सुधार होता है। ऐसी भूमियां जहाँ सिंचाई के लिये क्षारीय जल का उपयोग होता है, वहाँ प्रेसमड का उपयोग काफी लाभकारी सिद्ध हो रहा है।

(ग) कार्बनिक मृदा सुधारक

गोबर की खाद: गोबर की खाद के उपयोग से क्षारीय मृदाओं की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं में सुधार होता है। गोबर की खाद, अवक्षेपित कैल्शियम कार्बोनेट को घोलने में भी मदद करती है। इसके उपयोग से मृदा का पीएच मान तथा विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत कम होते हैं एवं जल रिसाव बढ़ जाता है।

पलवार (मल्चिंग): क्षारीय मृदाओं में फसल अवशेषों तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों की मल्चिंग करने से कई प्रकार के लाभ होते हैं जैसे कार्बन की मात्रा में बढ़ोत्तरी तथा जल के संचय में अधिकता। ऐसी भूमि जहाँ सिंचाई के लिये सिर्फ क्षारीय जल का उपयोग होता है, वहाँ मल्चिंग का उपयोग बहुत ही लाभदायक पाया गया है। क्योंकि मल्चिंग मृदा में लम्बे समय तक नमी बनाये रखता है, जिसकी वजह से फसलों में कम सिंचाई करनी पड़ती है।

जीवाणु खाद: क्षारीय मृदाओं में जीवाणु खाद के उपयोग करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

- मृदा की जैविक क्रियाओं में सुधार होता है जिसके फलस्वरूप मृदा में पोषक तत्वों का पुनःचक्रण बढ़ जाता है ।
- जीवाणु मृदा में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल उत्पन्न करते हैं जिसके फलस्वरूप मृदा संरचना में सुधार होता है।
- मृदा में फॉस्फोरस एवं जस्ते की उपलब्धता बढ़ जाती है, जिसे पौधे आसानी से ग्रहण करते हैं। इसी सन्दर्भ में भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने सीएसआर–बायो, हेलो–एजो एवं हेलो–पीएसबी नामक जीवाणु खाद तैयार की है, जिसके क्षारीय मृदाओं में संतोषजनक प्रभाव प्राप्त हुए हैं।

हरी खादः क्षारीय मृदाओं के सुधार के लिये हरी खाद की फसलें बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। हरी खाद में मुख्य रूप से ढैंचा, क्षारीय भूमि के प्रति सहनशील पाया गया है अतः इसे हरी खाद के उपयोग में लेना चाहिए। ढैंचा की फसल में फूल आने से पहले ही खेत में जुताई करके अच्छी तरह मिला देना चाहिए। ढैंचा की खड़ी फसल को खेत में मिलाने से मृदा में कार्बन, नाइट्रोजन एवं अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। कार्बनिक पदार्थों के सड़ने के साथ–साथ कई प्रकार के कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं। जिनके कारण मृदा का पीएच मान कम होने लगता है एवं मृदा संरचना में भी सुधार होता है। जिससे मृदा की जल रिसाव एवं जलधारण क्षमता भी बढ़ जाती है।

निष्कर्ष

वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करना हम सबके लिये बहुत बड़ी चुनौती है। इसके लिये यह अति आवश्यक है कि किसानों की फसल उत्पादकता में वृद्धि हो। सामान्यतः क्षारीय मृदाओं में उगाई जाने वाली फसलों के बीज अंकुरण में कमी आती है एवं वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और अनेक बार यह भी पाया गया है कि धान–गेहूँ की वानस्पतिक वृद्धि होने पर भी आखिरी अवस्था में दाने नहीं बनते, जिनसे किसानों को भारी नुकसान होता है। यह अति आवश्यक है कि क्षारीय मृदाओं के स्वास्थ्य को सही करने तथा अच्छा फसलोत्पादन लेने के लिये किसान भाई अपनी सुविधाओं के हिसाब से मृदा सुधारकों का उपयोग करें।

समाप्त

किसी भी काम में या तो आप जीतते हैं या फिर सीखते हैं। इसमें हार की कोई जगह नहीं होती।

प्रवेन्द्र श्योरान, कैलाश प्रजापत एवं रामेश्वर लाल मीणा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: sheoran76@rediffmail.com

निम्न गुणवत्ता जल का कृषि में उपयोग हेतु सतत् प्रबंधन

कृषि जोत के कुल 142 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल से देश की लगातार बढ़ती जनसंख्या को आवश्यक भोजन उपलब्ध करवाना अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसके साथ–साथ जलवायु परिर्वतन की स्थिति में सीमित प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ उत्तरोतर फसल उत्पादन बढ़ाना देश के वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों एवं किसानों के लिये अत्यंत गंभीर विषय है। खाद्यान्नों की इस कमी को पूरा करने के लिये देश में उपलब्ध लगभग 6.74 मिलियन हैक्टर लवणीय एवं क्षारीय भूमि को कृषि योग्य बनाना अत्यंत आवश्यक है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित तकनीकियों द्वारा लगभग 2.14 मिलियन हैक्टर लवणग्रस्त मृदा का सुधार कर लगभग 16–17 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पन्न करने में सफलता पाई है। परंतु लवणता की समस्या नये क्षेत्रों में लगातार बढ़ती जा रही है और ऐसी संभावना है कि इसका वर्तमान प्रभावित क्षेत्र वर्ष 2050 तक तीन गुना बढ़कर लगभग 20 मिलियन टन हो जायेगा। हमारे देश में उपयोग में लाने योग्य भूजल की क्षमता लगभग 32.3 मिलियन हैक्टर मीटर है जिसमें लगभग 42 प्रतिशत जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा रहा है। भूजल गुणवत्ता सर्वेक्षण के अनुसार हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक में लगभग 32 से 84 प्रतिशत भूजल खराब गुणवत्ता वाला है (तालिका 1)। लवणीय भूजल मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात, हरियाणा एवं पंजाब के शुष्क क्षेत्रों तथा क्षारीय भूजल उत्तर पश्चिमी राज्यों के अर्द्धशुष्क भागों में पाया जाता है। कृषि क्षेत्र की मांग व आपूर्ति के अंतर को पाटने के लिये निम्न गुणवत्ता जल पर कृषि निर्भरता एवं इसका समुचित उपयोग ध्यान देने योग्य विषय है।

निम्न गुणवत्ता जल द्वारा लगातार लम्बे समय तक बिना उचित मृदा, जल और फसल प्रबंधन उपायों को अपनाए उपयोग करना मृदा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण दोनों के लिये हानिकारक हो सकता है। बारानी एवं शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई के जल से संबंधित समस्याएं अधिक जटिल होती है क्योंकि प्रायः वहाँ भूजल लवणीय और कम मात्रा में उपलब्ध होता है। इन क्षेत्रों के भूजल में लवणों की मात्रा मध्यम से न्यूनतम परन्तु कभी–कभी उसमें क्षार की मात्रा अधिक होती है तथा अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा भी अधिक होती है। इस लेख में लवण प्रभावित जल द्वारा सिंचाई हेतु प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों एवं सावधानियों का विवरण प्रस्तुत है जिनके उपयोग से खारे पानी को लम्बे समय तक प्रयोग करते हुये फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी एवं भूमि की गुणवत्ता को स्थिर रखा जा सकता है।

तालिका 1. विभिन्न राज्यों में गुणवत्ता के आधार पर भूजल का वितरण

राज्य	भूजल की गुणवत्ता (प्रतिशत)		
	अच्छी	मध्यम	खराब
हरियाणा	37	8	55
पंजाब	59	22	19
उत्तरप्रदेश	37	20	43
गुजरात	70	20	10
राजस्थान	16	16	68
कर्नाटक	65	10	25

सिंचाई जल का वर्गीकरण एवं प्रभाव

सिंचाई के पानी का वर्गीकरण मुख्यतः लवणों की सांद्रता (वैद्युत चालकता, डेसीसीमन्स/मीटर), सोडियम अधिशोषण अनुपात (एसएआर) और अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी) के आधार पर किया जाता है। जहाँ लवणों की सांद्रता को वैद्युत चालकता मीटर से प्रत्यक्ष रूप में मापा जा सकता है, वहीं सोडियम अधिशोषण अनुपात और अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट का पता प्रयोगशाला में विश्लेषण कर निम्नलिखित सूत्रों द्वारा लगाया जा सकता है।

$$\text{सोडियम अधिशोषण अनुपात} = \frac{\text{सोडियम}}{\sqrt{\frac{\text{कैल्शियम} + \text{मैग्नीशियम}}{2}}}$$

अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट = (कार्बोनेट + बाईकार्बोनेट) – (कैल्शियम + मैग्नीशियम)

इन सूत्रों में सभी तत्वों की मात्रा मिली तुल्य/लीटर में ली जाती है।

देश के विभिन्न परिस्थितिकी क्षेत्रों में पानी को गुणवत्ता के अनुसार तीन मुख्य समूहों– अच्छा, लवणीय तथा क्षारीय, में बाँटा जा सकता है। विभिन्न जोखिमों के स्तर के अनुसार लवणीय तथा क्षारीय श्रेणियों को पुनः तीन उपसमूहों में बाँटा गया है (तालिका 2)। इसके अतिरिक्त एक अन्य समूह, जिसे विषाक्त पानी की संज्ञा दी गई है, में कुछ विषाक्त आयन जैसे बोरोन, फ्लोराइड, नाईट्रेट, सेलीनियम अथवा भारी तत्व इत्यादि फसलों के द्वारा मानव खाद्य श्रृंखला में चले जाते हैं।

लवणीय जल की पहचान

लवणीय पानी कसैला होता है व जमीन में लगातार उपयोग करने से सतह पर लवणों की सफेद परत जम जाती है। लवणीय जल में अधिकांशतः कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सोडियम एवं ऋणायन जैसे क्लोराइड अथवा सल्फेट होते हैं। बाईकार्बोनेट कुछ मात्रा में हो सकता है लेकिन कार्बोनेट आमतौर पर नहीं पाया जाता है। लवणीय जल प्रत्यक्ष रूप में पौधों को नुकसान नहीं करते। लवणीय जल के हानिकारक प्रभाव मुख्यतः मृदा में लवण एकत्रित होने से मृदा लवणता के कारण होते हैं। लवणीय जल से सिंचाई करने पर उसमें उपस्थित अत्यधिक लवणों के कारण मृदा घोल में उच्च परासरणीय दबाव के कारण पौधों में जल की उपलब्धता कम हो जाती है जिससे पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है। आमतौर पर लवणता का प्रभाव किसी एक विशेष कारण से नहीं बल्कि सभी कारणों के मिले–जूले दुष्प्रभावों के फलस्वरूप होता है।

तालिका 2. निम्न गुणवत्ता जल का वर्गीकरण

वर्गीकरण	वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर)	सोडियम अधिशोषण अनुपात (मिलीमोल/लीटर)1/2	अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (मिली तुल्य/लीटर)
अच्छा जल	2 से कम	10 से कम	2.5 से कम
लवणीय जल			
कम लवणीय	2–4	10 से कम	2.5 से कम
लवणीय	4 से अधिक	10 से कम	2.5 से कम
अधिक लवणीय	4 से अधिक	10 से अधिक	2.5 से कम
क्षारीय जल			
कम क्षारीय	4 से कम	10 से कम	2.5–4.0
क्षारीय	4 से कम	10 से कम	4 से अधिक
अधिक क्षारीय	परिवर्तनशील	10 से अधिक	4 से अधिक
विषाक्त जल		0.26 से 3.23	

सिंचाई के लिए लवणीय जल का समुचित उपयोग

फसल उत्पादन के लिए लवणीय जल के प्रयोग के अनेक विकल्प विद्यमान हैं। फसल उत्पादन के लिए प्रयुक्त व्यवहारिक कार्य योजनाएं इस प्रकार है–(1) जल का प्रत्यक्ष प्रयोग (2) जल का संयुक्त प्रयोग। जल के संयुक्त प्रयोग के अन्तर्गत निम्नलिखित किसी एक उचित विधि का प्रयोग किया जा सकता है–

- मिश्रण विधिः लवणीय जल को नहरी जल से मिश्रित करना
- चक्रीय विधिः लवणीय व नहरी जल का चक्रीय विधि से प्रयोग

लवणीय जल का प्रत्यक्ष प्रयोग

विभिन्न फसलों की लवणों के प्रति सहनशीलता भिन्न होती है। इसलिए पानी के प्रत्यक्ष प्रयोग के लिए पानी की लवणता को देखते हुए फसल का चुनाव करने की आवश्यकता होती है। उदाहरणस्वरूप अनाज वाली फसलें तुलनात्मक रूप से लवणों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं जबकि दाल एंव शाक–भाजी वाली फसलें सबसे अधिक संवेदनशील हैं। सामान्य रूप से तिलहन फसलें जिन्हें जल की कम आवश्यकता होती है, अधिक लवणीय जल सहन कर सकती हैं। सहनशीलता की सीमा मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती है। तुलनात्मक रूप से अधिक लवणता वाला जल अधिक मोटे कणों वाली मृदा में प्रयोग में लाया जा सकता है। फसलों के साथ ही लवण सहनशील प्रजातियों का चयन भी प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिये क्योंकि एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की लवण सहनशीलता भिन्न होती है। लवणीय जल द्वारा सिंचाई को सहन करने वाली एवं अधिक उपज देने वाली कुछ किस्में विकसित की गई हैं। जिनका विवरण तालिका 3 में दिया गया है।

लवणीय जल का संयुक्त प्रयोग

(क) लवणीय व नहरी जल का मिश्रित (संयुक्त) विधि से प्रयोग

खारे व मीठे पानी का सिंचाई के लिए संयुक्त प्रयोग करने पर होने वाला कुल लाभ उनके अलग–अलग प्रयोग किए जाने की अपेक्षा अधिक होता है। मिश्रण व चक्रीय विधियां जल के संयुक्त प्रयोग करने हेतु सफलतम विधियां हैं। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु में लवणीय जल से सिंचाई करने पर भूमि की लवणता में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। जहाँ अधिक लवणीय जल का प्रत्यक्ष रूप से फसल उत्पादन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता, ऐसे जल को नहरी या किसी अन्य स्त्रोत के अच्छे जल के साथ संयुक्त प्रयोग किया जा सकता है।

(ख) लवणीय व नहरी जल का चक्रीय विधि से प्रयोग

चक्रीय या क्रमिक प्रयोग एक ऐसी तकनीक है जिसमें अलवणीय व लवणीय जल का समुच्चय बोधक प्रयोग किया जाता है। इस कार्य योजना के अंतर्गत नहरी जल के स्थान पर लवणीय जल का प्रयोग पहले

तालिका 3. फसलों की लवण सहनशील प्रजातियाँ

फसल	प्रमुख प्रजातियाँ
धान	सीएसआर 30 बासमती, सीएसआर 36, सीएसआर 43
गेहूँ	केआरएल 210, केआरएल 213, केआरएल 19
सरसों	सीएस 60, सीएस 58, सीएस 56
चना	करनाल चना 1

से निर्धारित क्रम में किया जाता है। इस योजना का लाभ यह है कि भिन्न–भिन्न प्रकार के जल को मिलाने की आवश्यकता नहीं पडती। समय के अनुसार जब नहर का पानी उपलब्ध हो या फसल वृद्धि के संवेदी चरणों के आधार पर अनेक विकल्पों का प्रयोग किया जा सकता है जिनमें सर्वाधिक उपयोगी निम्न प्रकार है–

क्रमिक प्रयोग : इस तकनीक के अंतर्गत नहरी और लवणीय जल का प्रयोग पूर्व निर्धारित क्रम में किया जाता है। फसलों की बिजाई से पूर्व की सिंचाई नहरी जल से तथा इसके बाद की सिंचाईयां पहले से नियत तरीके से नहरी व लवणीय जल से करते हैं।

परिवर्तन विधि : अनेक फसलें अंकुरण तथा प्रस्फुटन अवस्था में अधिक संवेदनशील होती है। इस प्रकार की फसलों के लिए परिवर्तन विधि बहुत लाभदायक है। इस विधि में फसल बोने से पूर्व अथवा पहली सिंचाई नहरी जल व बाद की सिंचाई लवणीय जल से की जाती है। फसल वृद्धि के संवेदी चरण में अथवा जब यह डर हो कि मृदा की लवणता अधिकतम हो गई है तो इस स्थिति में लवणीय जल के बजाय नहरी जल से सिंचाई की जा सकती है। मौसमी परिवर्तन पद्धति मूलतः दो बातों पर निर्भर करती है, रबी के मौसम में नहरी जल की उपलब्धता कम होती है तथा फसलों की मृदा लवणता सहन करने की क्षमता भिन्न–भिन्न होने के कारण सस्यावर्तन का चयन इस प्रकार किया जाता है कि रबी की जो फसल मृदा की लवणता को अधिक सहन कर सकती है उसे रबी के मौसम में तथा खरीफ की जो फसल लवणता संवेदी है, उसे खरीफ में उगाया जाए। रबी में लवणीय जल तथा खरीफ में नहरी जल प्रयुक्त किया जाता है। मौसमी परिवर्तन का लाभ यह भी है कि रबी में पानी के साथ जो लवण मृदा स्तर में जमा हो जाते हैं वे खरीफ में नहरी सिंचाई व वर्षा के फलस्वरूप मृदा स्तर से निक्षालित हो जाते हैं तथा अगले वर्ष यह क्रम फिर शुरू किया जाता है।

सूक्ष्म सिंचाई विधियाँ : फव्वारा अथवा बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली, सतही सिंचाई प्रणाली की अपेक्षा अधिक लवणीय पानी के प्रयोग में ज्यादा सहायक है विशेषतया शाक फसलों के लिए जहाँ सतही सिंचाई प्रणाली द्वारा 2 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक लवणता का जल प्रयोग में लाना कठिन होता है।

मिश्रित पानी का उपयोग : यदि एक ही स्थान पर अच्छा व खारा पानी उपलब्ध हो तो उनको मिलाकर भी उपयोग किया जा सकता है। इनको इस अनुपात में मिलायें कि मिश्रित पानी की वैद्युत चालकता निश्चित सीमा से अधिक नहीं हो। चक्रीय विधि से अच्छा व खारा पानी बारी–बारी से दिया जाता है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि ज्यादातर फसलों की बढवार की प्रारम्भिक अवस्थाओं (बीज का अंकुरण व कल्ले फूटना) पर लवणों का ज्यादा बुरा प्रभाव पड़ता है, अतः प्रारम्भिक अवस्थाओं में अच्छा पानी व बाद की अवस्थाओं में खारा पानी भी दिया जाये तो फसल उत्पादन पर अधिक दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है।

निम्न गुणवत्ता लवणीय जल सिंचाई हेतु दिशा–निर्देश

- यदि लवणीय जल में सोडियम अधिशोषण अनुपात 20 से अधिक और/अथवा मैग्नीशियम/कैल्शियम का अनुपात 3 से अधिक तथा सिलिका की अधिकता हो तो, ऐसी अवस्था में वर्षा ऋतु में जलभराव की समस्या उत्पन्न हो सकती है। यदि उगाई जाने वाली फसलें सतही जलाक्रांति के प्रति संवेदनशील हों तो जिप्सम का प्रयोग करें।
- सिंचाई के लिए नहरी जल का प्रयोग बुवाई से पूर्व और प्रारम्भिक अवस्था में किया जाए।
- यदि फसल बोने से पहले सिंचाई के लिए लवणीय जल का प्रयोग किया जाना है तो 20 प्रतिशत अतिरिक्त बीज दर और फसल बोने के शीघ्र पश्चात् सिंचाई से बेहतर अंकुरण होगा।

- जब कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सोडियम अधिशोषण अनुपात 20 से अधिक हो तथा अधिक लवणता वाले जल का प्रयोग किया जाए तब वर्षा ऋतु में खेत को खाली छोड़ना लाभदायक होता है।
- जब सिंचाई जल की लवणता, मिट्टी की लवणता से कम हो तो मानसून आरंभ होने के ठीक पहले लवणीय जल की सिंचाई से मृदा की लवणता कम हो जाएगी और वर्षा द्वारा लवण की अधिक मात्रा को निक्षालित करने में पूर्ववर्ती मृदा की नमी सहायक होगी।
- लवणीय पर्यावरण में जैव पदार्थों के प्रयोग से उपज बढ़ती है।

समस्त भारत से प्राप्त अनुसंधान सूचनाओं के आधार पर खेतों में लवणीय जल के प्रयोग करने संबंधित कुछ दिशा–निर्देश केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा तैयार किए गए हैं जो तालिका 4 में दिए गए हैं।

- लवणीय जल से सिंचाई हल्की व बार–बार करनी चाहिए व जल में लवणों की मात्रा व मिट्टी के कणों के आकार के आधार पर हल्की सिंचाई के बाद गहरी सिंचाई दें, जिससे जड़ों के पास उपस्थित लवण जड़ों से दूर चले जायेंगे।
- अगर एक सिंचाई हेतु अच्छा पानी उपलब्ध हो तो उसे बुवाई से पूर्व देना चाहिए। जिससे जमीन में लवणों की मात्रा कम होने से बीज का अंकुरण अच्छा हो सके। बाद में पौधे की बढ़वार होने पर लवणीय/क्षारीय पानी से सिंचाई कर सकते हैं।
- यदि अच्छा व लवणीय दोनों पानी उपलब्ध हैं, तो उन्हें मिलाकर सिंचाई करने की अपेक्षा अलग–अलग सिंचाई हेतु प्रयोग करना चाहिए तथा अच्छे पानी से सिंचाई पहले तथा खारे पानी से बाद में सिंचाई करनी चाहिए।
- लवणीय/क्षारीय जल से सिंचाई के लिए जमीन को समतल करें जिससे खेत में पानी समान मात्रा में लगे व वर्षा द्वारा भी लवणों का निक्षालन अच्छा हो।
- जलग्रस्त इलाकों में भूमिगत लवणीय/क्षारीय जल को सिंचाई हेतु प्रयोग करने से भूजल स्तर में सुधार होता है।
- अत्यधिक तापमान व कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चिकनी तथा महीन कणाकार वाली मृदाओं में लवणीय व क्षारीय जल का उपयोग नहीं करना चाहिये। मोटे कणाकार वाली बलुई मृदा में इन जल का उपयोग किया जा सकता है।
- खेत में अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर खाद, कम्पोस्ट व केंचुआ खाद का भरपूर उपयोग करें।
- क्षारीय जल से सिंचाई के लिए खेत में 4 मिलीतुल्यांक/लीटर से अधिक अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट को उदासीन करने के लिए 86 कि॰ग्रा॰ जिप्सम/हैक्टर/सिंचाई की दर से खेत में बुवाई पूर्व डालें।
- सूखे खेत में बिजाई करें एवं बिजाई के उपरान्त अंकुरण व पौधों के अच्छी तरह जमने तक सतह पर पर्याप्त मात्रा में नमी बनाये रखें।
- रोपाई की जाने वाली फसल को मेड़ व नाली विधि में मेड़ के तले में दोनों तरफ रोपाई करें।

तालिका 4. निम्न गुणवत्ता वाले सिंचाई जल के प्रयोग हेतु दिशा–निर्देश (एआईसीआरपी– लवणीय जल, सीएसएसआरआई, एचएयू तथा पीएयू, 1990)

मृदा गठन (क्ले प्रतिशत)	फसल की लवण सहनशीलता	विभिन्न वर्षा क्षेत्रों हेतु सिंचाई जल की वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर)		
		<350 मिमी	350–550 मिमी	>550 मिमी
चिकनी (30 से कम)	संवेदनशील	1.0	1.0	1.5
	मध्यम सहनशील	1.5	2.0	3.0
	सहनशील	2.0	3.0	4.5
दोमट (20–30)	संवेदनशील	1.5	2.0	2.5
	मध्यम सहनशील	2.0	3.0	4.5
	सहनशील	4.0	6.0	8.0
बलुई दोमट (10–20)	संवेदनशील	2.0	2.5	3.0
	मध्यम सहनशील	4.0	6.0	8.0
	सहनशील	6.0	8.0	10.0
रेतीली (10 से अधिक)	संवेदनशील	..	3.0	3.0
	मध्यम सहनशील	6.0	7.5	9.0
	सहनशील	8.0	10.0	12.5

लवणीय जल (अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट, 2.5 मिलीतुल्य/लीटर से कम)

- खेत में नाली/मेड़ पूर्व–पश्चिम दिशा में बनानी चाहिये तथा बीज या पौध की रोपाई उत्तर दिशा में करनी चाहिए।
- पौधे से पौधे व कतारों के बीच की दूरी कम कर देनी चाहिये तथा बुवाई के लिए 20–30 प्रतिशत अधिक बीज का प्रयोग करें।
- बीज को 3 प्रतिशत सोडियम सल्फेट के घोल में भिगोकर बुवाई करने से बीजों का अंकुरण अच्छा होता है।
- मानसून से पूर्व खेत को भली–भाँति जुताई करके चारों तरफ मेड़ बनाकर खुला छोड़ देना चाहिये जिससे वर्षा का पानी लवणों को घोलकर जड़ क्षेत्र से नीचे निक्षालन कर सकें।
- निराई–गुड़ाई तथा मल्च का उपयोग कर खेत की सतह से जल के वाष्पीकरण को कम करना चाहिये।
- खारे पानी से सिंचित क्षेत्रों में वर्षा होने पर बाजरे की किस्म एच.एच.बी. 60, एम.एच. 169, ग्वार की किस्म एच.जी. 75, आर.जी.सी. 986 व अरण्डी की किस्म आर.सी.एच 1 उगायें। आवश्यकता होने पर खारे पानी से सिचाई करें। लोकी व भिण्डी के लिए रेतीली मृदा में बूँद–बूँद सिंचाई द्वारा 3.0 डेसी./मी. वैद्युत चालकता वाले पानी को सिंचाई के लिये सफलतापूर्वक उपयोग में लिया जा सकता है।

क्षारीय जल की पहचान

क्षारीय जल में कैल्शियम तथा मैग्नीशियम की अपेक्षा सोडियम अधिक मात्रा में होता है तथा कार्बोनेट व बाईकार्बोनेट की मात्रा भी अधिक होती है। ऐसे जल में फ्लोराइड, क्लोराइड, नाईट्रेट आदि आयन भी अधिक होते हैं जो इस जल को सिंचाई के लिए अनुपयुक्त बनाते हैं। इस जल से सिंचाई करने पर मृदा में

सोडियम एकत्रित हो जाता है जिसके कारण मृदा क्षारीय हो जाती है। यह बढ़ी हुई विनिमयशील सोडियम प्रतिशतता मृदा में वायु के आवागमन के साथ–साथ उसके भौतिक गुणों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। क्षारीय पानी मीठा व काफी पाचक होता है लेकिन इसके लगातार उपयोग से जमीन कठोर हो जाती है।

निम्न गुणवत्ता क्षारीय जल सिंचाई हेतु दिशा–निर्देश

कृषि में क्षारीय जल के सुरक्षित प्रयोग हेतु जिप्सम का प्रयोग किया जाता है। लवण सहनशील फसलों का चुनाव, सिंचाई प्रबंधन, खाद एवं उर्वरक प्रबंधन आदि द्वारा भी क्षारीय जल के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। निम्नांकित प्रभावी तकनीकों को अपनाकर निम्न गुणवत्ता क्षारीय जल द्वारा सिंचाई करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

उपयुक्त फसल चक्र का चुनाव : क्षारीय जल के प्रयोग वाले क्षेत्रों में कुछ विशेष सस्य क्रियाएं करने से फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। निम्नांकित सस्य क्रियायें अपनाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

- शुष्क (वर्षा 35 सेंमी. से कम) क्षेत्रों में रबी में केवल सहनशील फसलें लेना उपयुक्त है।
- अर्द्धशुष्क (वर्षा 35–55 सेंमी.) क्षेत्रों में ज्वार–गेहूँ, ग्वार–गेहूँ, बाजरा–गेहूँ तथा कपास–गेहूँ फसल चक्र उपयुक्त पाया गया है।
- 55 सेंमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में धान–गेहूँ, धान–सरसों, धान–सफतल, धान–बरसीम, ज्वार (चारा)–सरसों, ढैंचा (हरीखाद)–गेहूँ, सुडान घास–जई आदि फसल चक्र लाभकारी पाये गये हैं किन्तु सिंचाई के साथ पर्याप्त मात्रा में जिप्सम का प्रयोग आवश्यक है।

क्षारीय जल में जिप्सम का प्रयोग : फसलों में क्षारीय जल से सिंचाई करने पर उत्पन्न क्षारीयता के प्रभाव को कम करने के लिए जिप्सम का प्रयोग किया जाता है। अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेटयुक्त सिंचाई जल के लिए जिप्सम की आवश्यक मात्रा का निर्धारण जिले की मिट्टी एवं पानी जाँच करने वाली प्रयोगशाला में सिंचाई जल का नमूना भेजकर किया जा सकता है।

- जिप्सम की उचित मात्रा सिंचाई जल के साथ प्रयोग करके तथा वर्षा जल के उचित संरक्षण द्वारा क्षारीय पानी को फसलों की सिंचाई हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।
- यद्यपि जिप्सम की सही मात्रा का अनुमान जल गुणवत्ता रिपोर्ट से मिलता है परन्तु साधारणतया क्षारीय पानी में यह मात्रा लगभग 0.75 टन से 2.0 टन/हैक्टर/वर्ष हो सकती है।
- कृषि ग्रेड जिप्सम को प्रयोग करने के लिये मई–जून के महीने में इसे पूरे खेत में एक समान बिखेर दिया जाता है।
- क्षारीय पानी में जिप्सम मिलाने के लिये पानी को विशेष रूप से बनी हौदी से गुजारा जाता है जिसमें जिप्सम की पर्याप्त मात्रा बोरी में भरकर पड़ी रहती है। इस विधि से पूरे खेत में सिंचाई जल के साथ जिप्सम की एक समान मात्रा पहुँचायी जा सकती है।

अधिक कैल्शियम युक्त मृदा में क्षारीय पानी (उच्च आर.एस.सी.) से खेती करने पर फसल में क्लोरोसिस हो जाती है, जो इन मृदाओं में लौह तत्व की अनुपलब्धता के कारण होती है। इस लौह तत्व की कमी को दूर

तालिका 5. क्षारीय जल को सिंचाई में प्रयोग करने हेतु दिशा–निर्देश

मृदा संरचना (प्रतिशत क्ले)	सोडियम अधिशोषण अनुपात (मिलीमोल/लीटर)$^{1/2}$	अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की सीमा (मिलीतुल्य/लीटर)	विशेष
महीन सरंचना (30 से अधिक)	10	25–3.5	यह सीमायें खरीफ परती के बाद रबी फसल चक्र हेतु हैं जहाँ वार्षिक वर्षा 350–550 मिमी. होती है। दो फसलें उगाने हेतु जिप्सम का प्रयोग आवश्यक होता है। जिप्सम की मात्रा रबी में प्रयोग किये गये जल की मात्रा पर निर्भर करती है। खरीफ में कम जल मांग वाली फसलें तथा जहाँ तक संभव हो धान केवल अधिक वर्षा (55 सेंमी.) वाले क्षेत्रों में ही उगाया जाए।
कम महीन सरंचना (20–30)	10	3.5–5.0	
कम मोटी सरंचना (10–20)	15	5.0–7.5	
मोटी सरंचना (10 से कम)	20	7.5–10.0	

करने के लिये ग्वार व सरसों की फसल में 50 प्रतिशत अथवा जिप्सम आवश्यकता के हिसाब से जमीन में पाइराईट डालें या 2 प्रतिशत हरा कशीश व 0.1 प्रतिशत साईट्रिक अम्ल के घोल को बुवाई के 30–40 दिन पर छिड़काव करें।

सिंचाई प्रबंधन : क्षारीय जल से सिंचाई करते समय अधिक पानी एक बार देने के बजाय कम अंतराल पर दो सिंचाइयों द्वारा देना ठीक रहता है। हल्की सिंचाई व दो सिंचाइयों के बीच कम अन्तराल रखने से अधिक लाभ होता है। नहरी तथा क्षारीय पानी मिला कर या बारी–बारी से उपयोग करना अच्छा रहता है। खेत में बुवाई से पूर्व पलेवा अच्छे या नहरी पानी से ही करना चाहिए तथा फसल की सिंचाई के लिये क्षारीय पानी का प्रयोग करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन : क्षारीय जल से सिंचाई करने वाले क्षेत्रों में लगभग 25 प्रतिशत अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए। 20 किग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर प्रयोग करने से प्रभावित क्षेत्रों में उपज में काफी वृद्धि होती है। समय–समय पर हरी खाद या गोबर खाद का प्रयोग करने से क्षारीय पानी से होने वाली हानि कम की जा सकती है।

प्रयोगों के आधार पर निम्न गुणवत्ता वाले क्षारीय जल के कृषि में प्रयोग हेतु दिशा–निर्देश तैयार किये गये हैं जिनका विवरण तालिका 5 में दिया गया है। इन दिशा–निर्देशों के अनुसार क्षारीय जल का उचित उपयोग किया जा सकता है और कृषि में अधिक समय तक कम से कम दुष्प्रभाव के साथ सफल फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार निम्न गुणवत्ता भूजल वाले क्षेत्रों में जल एवं मृदा गुणवत्ता की जाँच व विशेषज्ञों से परामर्श लेकर मार्ग–निर्देशिका में दिये गए सिद्धान्तों को अपनाकर मृदा को उपजाऊ रखते हुए अधिक फसलोत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

समाप्त

गोविन्द मकराना[1], राजेन्द्र कुमार यादव[2], तारामणि यादव[1] एवं राकेश कुमार[1]
[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: makarana17@gmail.com

उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा लवणीय एवं क्षारीय जल का सिंचाई प्रबंधन

हमारे देश के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में फसल उत्पादन को सीमित करने वाला एक प्रमुख कारक सिंचाई जल की अपर्याप्त आपूर्ति है। आंकड़ों के अनुसार सन् 2050 तक कृषि क्षेत्र में जल उपयोग की हिस्सेदारी 83 से घटकर 65 प्रतिशत हो सकती है। बढ़ती आबादी की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना कृषि क्षेत्र की ही जिम्मेदारी है। इस क्षेत्र की उत्पादकता लगातार बनाए रखने हेतु सिंचाई की पर्याप्त आपूर्ति आवश्यक है। सर्वेक्षणों से संकेत मिलता है कि विभिन्न राज्यों में खराब गुणवत्ता वाले भूजल का उपयोग कुल भूजल का 30–80 प्रतिशत है। शुष्क क्षेत्रों में भूजल काफी हद तक लवणीय जबकि अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में यह क्षारीय होता है। कृषि क्षेत्र में सिंचाई की पर्याप्त आपूर्ति हेतु इस निम्न गुणवत्ता जल का उपयोग करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। सिंचाई के लिए निम्न गुणवत्ता जल के अंधाधुंध उपयोग से लवणता, क्षारीयता और जहरीले प्रभावों के माध्यम से मिट्टी की उत्पादकता में गिरावट आ रही है। उत्पादकता कम करने के साथ उत्पादन की गुणवत्ता में गिरावट को

तालिका 1. कुछ महत्वपूर्ण फसलों की लवणता के प्रति सहनशीलता

संवेदनशील	मध्यम संवेदनशील	मध्यम सहनशील	सहनशील
ईसी$_{th}$ (थ्रेसहोल्ड)	1.2–3.0	3–6	6–10
1.2 से कम ईसी$_0$ (डेडलाइन)	8–16	16–24	24–32
8.0 से कम काबुली चना, फलियां, तिल, प्याज, गाजर, चना	बाकला, मक्का, मूंगफली, गन्ना, रिजका, बरसीम, मूली, धान, गोभी	गेहूँ, सरसों, लोबिया, जई, सोयाबीन, पालक, बाजरा, खरबूजा	जौ, कपास, चुकन्दर, कुसुम

तालिका 2. फसलों की क्षारीयता के लिए सापेक्ष सहनशीलता

ईएसपी	फसलों के नाम
10–15	कुसुम, मैश, मटर, अरहर उड़द, केला
16–20	चना, सोयाबीन, पपीता, मक्का, संतरा
20–25	मूंगफली, लोबिया, प्याज, बाजरा, अमरूद, बेल, अंगूर
25–30	अलसी, लहसुन, ग्वार, पामारोसा, नींबू घास, ज्वार, कपास
30–50	सरसों, गेहूँ, सूरजमुखी, बेर, करौंदा, फाल्सा, बरसीम
50–60	जौ, ढैंचा, पेरा घास, रोड्स घास
60–70	धान, चुकन्दर, करनाल घास

भी प्रेरित करता है और खेती योग्य फसलों की पसंद को भी सीमित करता है। हालांकि स्थान विशेष ''मिट्टी–जल–जलवायु–फसल प्रबंधन'' एवं उचित कृषि–प्रथाओं को अपनाने से फसल उत्पादन, गुणवत्ता और मिट्टी के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है। इस प्रकार जिस पानी को पारंपरिक रूप से अनुपयुक्त माना जाता है, उसको भी फसल उत्पादन के लिए लाभदायक रूप से उपयोग किया जा सकता है।

लवणीय और क्षारीय जल उपयोग के लिए उचित प्रबंधन तकनीकियाँ

(क) उपयुक्त फसल और फसल चक्र का चुनावः लवणीय जल सिंचाई वाले क्षेत्रों में उपयुक्त फसलों और फसल के अनुक्रमों का चयन सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि फसलें लवणता के प्रति अपनी सहिष्णुता में भिन्न–भिन्न होती है। पहली फसल का चयन मिट्टी की लवणता और क्षारीयता की डिग्री पर निर्भर करता है। शुरुआत में लवणता के प्रति अधिक सहनशील सब्जियों को प्राथमिकता दी जाती है। सामान्यतया अनाज एवं तिलहनी फसलें, दलहनी फसलों से अधिक सहनशील होती हैं। तालिका 1 व 2 में क्रमशः लवणता एवं क्षारीयता के विभिन स्तर की सहनशीलता दर्शायी गयी हैं।

(ख) फसलों की लवण सहनशील प्रजातियों का चुनाव : फसलों की लवण सहनशीलता उनकी प्रजातियों एवं मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती है। सिंचाई जल की लवणता/क्षारीयता को सहन करने एवं अधिक उपज देने वाली विभिन्न फसलों की विकसित किस्मों का विवरण तालिका 3 में दिया गया है।

क्षारीय जल के लिए उपयुक्त फसलों का चयन करने के लिए प्रासंगिक दिशा–निर्देश :

- गन्ना और धान जैसी अधिक पानी की आवश्यकता वाली फसलों की खेती को क्षारीय जल उपयोग से बचाना चाहिए क्योंकि इससे सिंचाई करने पर विनिमययोग्य सोडियम की परत मिट्टी की ऊपरी सतह में बन जाती है।

- कम वर्षा वाले क्षेत्रों (400 मिमी से कम) में जहाँ अच्छी गुणवत्ता का जल उपलब्ध नहीं है, खरीफ के

तालिका 3. लवणीय एवं क्षारीय वातावरण के लिए उत्तम किस्में

फसल	लवणता सहनशील	क्षारीयता सहनशील
गेहूँ	राज 2325, राज 2560, राज 3077, डब्लूएच 157 एचआई 1077,	केआरएल 1–4, केआरएल 19, राज 3077, केआरएल 210, केआरएल 213
बाजरा	एमएच 269, 331, 427, एचएचबी 60	एमएच 269, 280, 427, एचएचबी 392
सरसों	सीएस 416, सीएस 3–30, पूसाबोल्ड	सीएस 15, सीएस 52, वरुणा, डीआईआरए 336, सीएस 54, सीएस 56
कपास	डीएचवाई 286, सीपीडी 404, जी 17060, जीए, जेके 276–10–5, जीडीएच 9	एचवाई 6, सर्वोत्तम, एलआरए 5166
कुसुम	एचयूएस 305, ए 1, भीमा	मंजीरा, एपीआरआर 3, ए 300
ज्वार	एसपीवी 475, 881, 678, 669, सीएसएच 11	एसपीवी 475, 1010, सीएसएच 1, 11, 14
जौ	रत्ना, आरएल 345, आरडी 103, 137, के 169	डीएल 4, 106, 120, डीएचएस 12
धान	सीएसआर 30, सीएसआर 36	सीएसआर 10, सीएसआर 13, सीएसआर 23, सीएसआर 30, सीएसआर 36

दौरान खेतों को खाली छोड़ देना चाहिए। हालांकि, जड़ वाली, गेहूँ और सरसों जैसी सहिष्णु और अर्ध–सहनशील फसलों को रबी (सर्दी) के दौरान उगा सकते हैं।

- ज्वार–गेहूँ, ग्वार–गेहूँ, बाजरा–गेहूँ और कपास–गेहूँ के चक्र को वर्षा वाले क्षेत्रों (400 मिमी से अधिक) में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बशर्ते खरीफ फसलों की बुवाई वर्षा या अच्छी गुणवत्ता के पानी के साथ की जाये और 2 खरीफ फसलों पर 3 सिंचाई क्षारीय जल द्वारा की जा सकती है।

- अधिक वर्षा वाले जलोढ़ मैदानों में (600 मिमी से अधिक) धान–गेहूँ, धान–सरसों, ज्वार–सरसों, और ढैंचा–गेहूँ फसल चक्र का सफलतापूर्वक उपयोग जिप्सम के साथ किया जा सकता है।

- अप्रैल से जून के महीनों में गर्मी की फसलों के लिए क्षारीय जल का उपयोग सिंचाई के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

(ग) बुवाई पूर्व सिंचाई (पलेवा) : सामान्यतया लवणीय परिस्थितियों में, फसल अवधि के दौरान मिट्टी की उपरी कुछ सेंटीमीटर सतह में लवण जमा होता है। जहाँ भूमिगत जल उपरी सतह में मौजूद होता है, वहाँ इसके गिरने से जड़ क्षेत्र (विशेष रूप से शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों) में अत्यधिक नमक का संचय हो सकता है। इन स्थितियों के तहत अंकुरण और पैदावार दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके लिए एक बुवाई पूर्व सिंचाई अंकुरण और प्रारंभिक विकास में सुधार के लिए बहुत उपयोगी और आवश्यक है। यदि अच्छी गुणवत्ता वाला नहरी जल उपलब्ध हो तो बुवाई पूर्व सिंचाई इसके द्वारा की जानी चाहिए।

(घ) क्षारीय पानी के लिए सुधारकों का उपयोग : क्षारीय पानी का कैल्शियम की आपूर्ति और मिट्टी के भौतिक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कैल्शियम युक्त सुधारकों जैसे जिप्सम द्वारा इस तरह के पानी का न्यूनीकरण करके प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसी तरह फॉस्फोजिप्सम, पाइराइट्स, अम्लीय या अम्ल बनाने वाले अन्य पदार्थों का उपयोग भी किया जा सकता है जो मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट से कैल्शियम को मुक्त करने में सहायक हों।

जिप्सम की आवश्यकता, उपयोग और समय की विधि: सिंचाई जल की गुणवत्ता और मात्रा के आधार पर जिप्सम की मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है। सिंचाई जल में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी) के प्रत्येक मिली तुल्यांक को उदासीन करने के लिए लगभग 12 किलोग्राम/हैक्टर जिप्सम की मात्रा दी जानी चाहिए। जिप्सम उपयोग का सबसे उपयुक्त समय मानसून अर्थात जून से पहले/मानसून की पहली बारिश या मानसून की शुरूआत की बारिश के बाद है।

जिप्सम बेड द्वारा क्षारीय जल को गुजारना, सुधार करने का एक और तरीका है, जिप्सम बेड विशेष रूप से निर्मित ईंट–सीमेंट–कंक्रीट का कक्ष होता है, जिसमें जिप्सम के ढेले भरे जाते हैं। यह कक्ष एक तरफ ट्यूबवेल के पानी गिरने के पाइप से और दूसरी तरफ पानी की नाली से जुड़ा हुआ होता है। कक्ष का आकार ट्यूबवेल के पानी के बहाव और पानी की आरएससी पर निर्भर करता है। नीचे से 10 सेंमी. की ऊँचाई पर तारनेट (2 गुणा 2 मिमी) के साथ कवर किया जाता है। किसान भी ट्यूबवेल के पानी के पड़ाव/झरने अनुसार जिप्सम कक्ष को परिवर्तित कर सकते हैं।

(ड़) बीज दर और दूरी : लवणता/क्षारीयता के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए अधिक

बीज दर और कतार व पौधों की कम दूरी की सलाह दी जाती है। कपास, बाजरा, ज्वार, गेहूँ, जौ, सरसों की सामान्य मिट्टी के लिए अनुशंसित बीज दर से लवणता/क्षारीयता की स्थिति में 25 प्रतिशत अधिक उपयोग करनी चाहिए। प्रत्यारोपित फसलों में रोपित पौधों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

(च) बीज उपचार : अनुसंधान में पाया गया है कि लवण सहिष्णुता को प्रेरित करने के लिए बीज और पौध का रासायनिक उपचार करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए 3 प्रतिशत सोडियम सल्फेट का तरल घोल काम में ले सकते हैं।

(छ) बुवाई/रोपण के लिए मुख्य अभ्यास : सूर्य की दिशा के विपरीत, मेड के मध्य में चुकंदर की बुवाई करना, समतल और मेड के उपर बुवाई करने की तुलना में काफी अधिक उपज प्रदान करती है। इसी प्रकार गन्ना में, रोपण की खूड विधि, समतल रोपण की तुलना में काफी अधिक उपज देती है क्योंकि लवण बेड के किनारों के शीर्ष पर चले जाते हैं। वांछित गहराई और रोपण के शुरूआती उपयुक्त फूटान के लिए बीज और उर्वरकों की उचित मात्रा का उपयोग सुनिश्चित करना चाहिए। इस प्रयोजन की आपूर्ति हेतु बीज–सह उर्वरक ड्रिल को प्राथमिकता दी जाती है। यदि बीज ड्रिल उपलब्ध नहीं है, तो बुवाई केरा या पोरा विधि द्वारा की जानी चाहिए।

(ज) फसल अवशेष प्रबंधन : वाष्पीकरण को कम करने के लिए खेत में 30 से 50 प्रतिशत फसल अवशेष का कवर होना चाहिए। मिट्टी की परतों में जहाँ फसल रोपण में क्षति सबसे अधिक होने की संभावना होती है, फसल अवशेष के कारण वहाँ मिट्टी नम रहती है और लवण का अधिक प्रभावी होने का खतरा नहीं होता है। ड्रिप सिंचाई के साथ प्रयुक्त प्लास्टिक कवर के छिद्र प्रभावी ढंग से वाष्पीकरण कर लवण की मात्रा को कम करते हैं।

(झ) बेहतर जल प्रबंधन : फार्म में जल प्रबंधन तकनीक में भूमि सतह का उचित समतलीकरण करना और आकार, कुशल डिजाइन और सिंचाई विधियों का ले–आउट इत्यादि का ख्याल रखा जाता है। पर्याप्त नमी और कम नमी की स्थिति में सिंचाई के वैज्ञानिक शेड्यूलिंग, उच्च जल तालिका गहराई के तहत सिंचाई प्रबंधन और इष्टतम जल उपयोग के लिए फसल योजना आदि शामिल है।

(ञ) लेजर लेवलर द्वारा भूमि समतलीकरण : भूमि की ऊबड–खाबड (असमतल) सतह खेती के संचालन, ऊर्जा उपयोग, वायुमंडल, फसल वृद्धि और मुख्य रूप से पोषक तत्व–पानी की परस्पर क्रियाओं के माध्यम से उपज को प्रभावित करती है। सटीक भूमि समतलीकरण, सघन सिंचाई वाली खेती में कुछ यांत्रिक कारकों में से एक है जो बेहतर फसल वृद्धि प्राप्त करने, सिंचाई जल बचाने और कारक तत्वों की उपयोग क्षमता में सुधार के उद्देश्यों को पूरा करती है।

(ट) सिंचाई की विधियाँ : अनुसंधान में पाया गया कि ड्रिप सिंचाई विधि द्वारा लवणीय मृदा का निक्षालन अधिक कुशल होता है क्योंकि इससे मिट्टी को असंतृप्त स्थिति में बनाए रखा जाता है और पानी के प्रवाह की दर अपेक्षाकृत धीमी होती है। लवणीय मृदा में सिंचाई की भराव (फ्लडिंग) विधि की निक्षालन दक्षता, छिड़काव (स्प्रिंकलर) और ड्रिप सिंचाई विधियों से कम है। ड्रिप सिंचाई विधि लवणीय जल के लिए भी उपयुक्त है क्योंकि यह लवण की कम मात्रा और उच्च नमी क्षेत्र को बनाए रखने में मदद करती है जो परिणामस्वरूप फसलवृद्धि के लिए अनुकूल स्थिति होती है।

(ठ) जल उपयोग प्रबंधन : जड़ क्षेत्र के नीचे लवण निक्षालित करने के अलावा, लवण को प्राथमिक जड़ क्षेत्र से कुछ विशेष फसल क्यारी, खूड सिंचित रेजड बेड (एफआईआरबी) और सतह सिंचाई प्रणाली के द्वारा दूर ले जाया जा सकता है। कई अध्ययनों में कपास/बाजरा–गेहूँ के चक्र में एफआईआरबी को पारंपरिक रोपण से बेहतर पाया गया है।

(ड) सिंचाई निर्धारण (शेड्यूलिंग) : अगर भूमिगत पानी अच्छी गुणवत्ता और भूमि की कुछ सीमाओं के भीतर है तो सिंचाई के उचित शेड्यूलिंग से सिंचाई जल की पर्याप्त बचत हो सकती है। उचित सिंचाई प्रथाओं का निर्णय लेने के लिए विभिन्न स्थितियों के तहत मिट्टी–पानी–पौधे–जलवायु संबंधों की उचित समझ आवश्यक है।

लवणता की स्थिति के लिए सिंचाई और निक्षालन प्रबंधन :

- बुवाई से पूर्व खारे पानी की भारी सिंचाई, सामान्य वर्षा वाले क्षेत्रों में लागू की जानी चाहिए ताकि रबी मौसम के दौरान जमा लवणों का निक्षालन हो सके।
- बेहतर गुणवत्ता वाले पानी का उपयोग बुवाई से पूर्व वाली सिंचाई के लिए किया जाना चाहिए क्योंकि प्रारंभिक फसल विकास चरणों में अंकुरण सबसे संवेदनशील चरण है। इसके बाद फसलों द्वारा उच्च लवणता सहन करने पर निम्न गुणवत्ता जल की सिंचाई की जा सकती है।
- ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली विशेष रूप से उच्च मूल्य वाली फसलों में लवणीय जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए कारगर है।
- फसल के उगने से पूर्व लवणीय जल की स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली से फसलों की बेहतर जमावट होती है।
- स्वदेशी तरीकों में सूक्ष्म पैमाने पर सिंचाई घडों (मिट्टी के बर्तन) का उपयोग भी कर सकते हैं।
- मौसमी चक्रीय उपयोग में, संवेदनशील फसलों/सहिष्णु फसलों के लिए प्रारंभिक चरणों में, ताजा पानी का उपयोग पहले से उगाई जाने वाली सहिष्णु फसलों के लिए किया जाता है। क्योंकि प्रारंभिक चरणों से पूर्व वाली लवणीय सिंचाई के कारण संचित लवणों का निक्षालन हो सके।

(ढ) बेहतर पोषक तत्व/उर्वरता का प्रबंधन :

कार्बनिक खाद: क्षारीय पानी से सिंचित मिट्टी में खाद और उर्वरकों का उपयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। पौधे को पोषक तत्व प्रदान करने के अलावा जैविक खाद का उपयोग, मिट्टी के रासायनिक, भौतिक और जैविक गुणों में सुधार लाता है। अनुसंधान में पाया गया कि गोबर खाद/कंपोस्ट या हरी खाद के उपयोग से मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार हुआ है। यह भी पाया गया कि गर्मी के दौरान ढैंचा की हरी खाद के साथ धान का उत्पादन, 80 किलोग्राम नाइट्रोजन/हैक्टर के समान प्राप्त हुआ।

(क) नाइट्रोजन प्रबंधन: लवणीय मृदा में, क्रमशः 160, 120, 100, 120 और 80 किलोग्राम/हैक्टर नाइट्रोजन का प्रयोग गेहूँ, जौ, सरसों, बाजरा और कपास की फसलों में सकारात्मक परिणाम दर्शाता है। नाइट्रोजन उर्वरकों को विभाजित खुराक में लागू किया जाना चाहिए क्योंकि वाष्पीकरण तथा विनाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रोजन की कमी होती है। नाइट्रोजन की पहली खुराक (बाजरा, गेहूँ, जौ, कपास

और सरसों के लिए आधा) फॉस्फोरस और पोटाश की आवश्यक मात्रा के साथ बुवाई या उससे पहले देनी चाहिए। शेष नत्रजन फसल वृद्धि के दौरान दो समान मात्रा में विभाजित करके दे सकते हैं।

(ख) फॉस्फोरस प्रबंधनः सामान्यतया लवणता की स्थिति में मिट्टी में उपलब्ध फॉस्फोरस की कमी होती है। इन मृदाओं में सामान्य परिस्थितियों में अनुशंसित खुराक से 50 प्रतिशत अधिक फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है। फॉस्फोरस का उपयोग सीधे फॉस्फोरस प्रदान करने या फ्लोराइड और क्लोराइड जैसे जहरीले तत्वों के अवशोषण को कम करके लवणीय मिट्टी में फसलों की पैदावार में वृद्धि करने में सहायक है।

(ग) पोटेशियम प्रबंधनः क्षारीय पानी द्वारा सिंचाई करने पर क्षारीयता बढ़ती है। क्षारीयता के बढ़ते स्तर पर आमतौर पर पोटेशियम घटता है और पौधों में सोडियम बढ़ता है। इन स्थितियों में मृदा घोल में उच्च सोडियम और कम कैल्शियम स्थिति के साथ पोटेशियम ग्रहण भी कम हो जाता है।

(घ) सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधनः विशेष रूप से क्षारीय जल सिंचित भूमि में जिंक की कमी के संकेत मिलते हैं और फसल में इसके उपयोग से अनुकूल प्रतिक्रिया होती है। अनुसंधान में पाया गया कि धान की पहली फसल के लिए केवल 20–25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर का आरंभिक उपयोग पर्याप्त होता है। 3–4 साल बाद जब क्षार की स्थिति कम हो जाती है, तो इसका उपयोग आवश्यक नहीं है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जहाँ सिंचाई के लिए खारे पानी का उपयोग किया जाता है ऐसे क्षेत्रों में वैज्ञानिक प्रथाओं के पैकेज और प्रबंधन को अपनाने से सफल फसल उत्पादन सुनिश्चित हो सकता है।

समाप्त

जब कोई गलती हो जाए तो उसे बहुत देर तक मत देखो,
उसका कारण समझो और आगे बढ़ो।

सत्येन्द्र कुमार एवं भास्कर नरजरी
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: s.kumar2@icar.gov.in

भूजल पुनर्भरण द्वारा जल गुणवत्ता में सुधार

भारतवर्ष की लगभग 60 प्रतिशत सिंचाई तथा 80 प्रतिशत पीने के पानी की आवश्यकता की पूर्ति भूजल स्रोतों से होती है। पिछले कुछ समय में संचालन एवं दोहन सुविधाओं में प्रगति एवं व्यक्तिगत मालिकाना वर्चस्व के कारण भूजल विकास तेजी से परन्तु असुचारू ढंग से हुआ, परिणामस्वरुप देश के लगभग 15 प्रतिशत भूभागों में भूजल स्तर अप्रत्याशित रूप से नीचे चला गया तथा सन् 2020 तक इसके प्रतिकूल प्रभाव देश के 40 प्रतिशत भूभाग पर देखने को मिल सकते हैं। भूजल विकास की स्थिति के अनुसार, खण्डों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। अतिः दोहन (विकास स्थिति 100 प्रतिशत से अधिक), डार्क (85–100 प्रतिशत), ग्रे (65–85 प्रतिशत विकास) और सफेद (65 प्रतिशत से कम विकास)। भूजल विकास स्थिति वर्षभर में होने वाले पुनर्भरण एवं भूजल दोहन की मात्रा के अनुपात को इंगित करती है। तेजी से गिरते भूजल स्तर के साथ कुछ क्षेत्रों में भूजल गुणवत्ता भी खराब हो रही है। निरन्तर गिरते भूजल स्तर एवं गुणवत्ता में हो रही कमी आने वाले दिनो में टिकाऊ खेती के लिए एक बड़ी चुनौती साबित हो सकती है।

सिंचाई जल गुणवत्ता

जल में विभिन्न रासायनिक तत्व घुले होते हैं परन्तु जब इनकी मात्रा एक तय सीमा (मान) से अधिक हो जाती है तो इनका प्रयोग सीमित हो जाता है। इन्हें निम्न गुणवत्ता जल के रूप में परिभाषित करते हैं। निम्न गुणवत्ता जल को मुख्यतः लवणीय एवं क्षारीय दो श्रेणीयों में बांट सकते हैं। यदि किसी जल में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएसी) की मात्रा 2.5 से अधिक हो, उसे क्षारीय जल कहते है तथा इसके द्वारा सिंचाई से मिट्टी की भौतिक दशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के जल से लगातार सिंचाई करने से जमीन की अंतःसरण दर अथवा पानी सोखने की क्षमता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप देर तक खेत में पानी जमा रहता है जिसका फसल पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार घुलनशील लवणों की मात्रा के आधार पर जल की लवणता का आंकलन किया जाता है, जिसे वैद्युत चालकता (ईसी) के आधार पर परिभाषित किया जाता है। सिंचाई जल की वैद्युत चालकता का मान यदि 4 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक हो तो उसे खेती के लिए अनुपयुक्त मानते है। अर्थात् इसके प्रयोग से पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका बनी रहती है।

निम्न गुणवत्ता वाले भूजल की गुणवत्ता सुधारने का सबसे सरल एवं सस्ता उपाय इसे मीठे (अच्छे) जल के साथ मिश्रित करना हो सकता है। वर्षा जल जिसमें घुलनशील रासायनिक तत्वों की मात्रा नगण्य होती है, मिश्रण हेतु एक अच्छा स्रोत हो सकता है। जिसके मिश्रण द्वारा निम्न गुणवत्ता जल की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। उन क्षेत्रों में जहाँ भूजल की गुणवत्ता खराब है, वहाँ वर्षा जल को अधिक से अधिक मात्रा में पुनर्भरण (रिचार्ज) कराकर भूजल में विद्यमान लवणों की सांद्रता को कम किया जा सकता है। वर्षा जल को त्वरित गति (प्राकृतिक दर से अधिक) से रिचार्ज कराने के लिए कृत्रिम भूजल पुनर्भरण का सहारा लिया जा सकता है ।

कृत्रिम भूजल पुनर्भरण

वर्षा या नहर के अधिशेष जल को कुओं में डालकर या भूजल पुनर्भरण संरचना के माध्यम से कृत्रिम भूजल पुनर्भरण करना, गिरते भूजल स्तर को रोकने का एक कारगर तरीका हो सकता है। इसके अतिरिक्त, भूजल गुणवत्ता सुधारने में भी कारगर साबित हो सकता है। कृत्रिम भूजल पुनर्भरण में प्राकृतिक पुनर्भरण की तुलना में रिचार्ज दर अधिक होने के कारण कम समय में अधिक मात्रा में भूसतह पर एकत्रित जल को जलभृत तक पहुँचाया जाता है। भारत में केन्द्रीय भूजल बोर्ड तथा कुछ अन्य दूसरी संस्थाएं जैसे विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थान व गैर सरकारी संस्थानों द्वारा कृत्रिम भूजल पुनर्भरण पर कुछ अध्ययन किए गए हैं। प्राकृतिक पुनर्भरण तरीकों में देरी से या कम मात्रा में भूजल पूनर्भरण होने के कारण कृत्रिम भूजल पुनर्भरण को काफी स्वीकृति मिल रही है। केन्द्रीय भूजल बोर्ड ने कुछ कुओं में वर्टिकल व पार्श्विक पुनर्भरण शाफ्ट द्वारा भूजल पूनर्भरण के कुछ प्रायोगिक अध्ययन पंजाब व हरियाणा में किए हैं। इनमें प्रमुख पंजाब के धूरी लिंक ड्रेन पर किया गया था। परन्तु केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा पूर्व में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि सामुदायिक या बहुत बड़े स्तर पर लगाए जाने वाली प्रणालियों/संरचनाओं के बजाय किसान के खेतों में व्यक्तिगत स्तर पर लगी छोटी पूनर्भरण संरचनाएं ज्यादा सफल रहती है। सामाजिक–आर्थिक पहलुओं व किसानों की भागीदारी का ध्यान तथा चालू या बेकार पड़े नलकूपों में छोटे व कम लागत के पूनर्भरण फिल्टर आदि का समावेश अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में भूजल पूनर्भरण कार्य में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधाान संस्थान के भूजल पूनर्भरण व जल उत्पादकता बढ़ाने संबंधी प्रयत्नों को भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय से प्रायोजित व वित्तपोषित कार्यक्रम "उत्तरी–पश्चिमी राज्यों में भूजल पूनर्भरण व जल उत्पादकता बढ़ाना" जिसमें हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश व गुजरात राज्य शामिल थे, के अन्तर्गत कृषक प्रक्षेत्र पर प्रदर्शन किया गया। भूजल पूनर्भरण संरचना की प्रतिस्थापना हेतु स्थानों/प्रक्षेत्र का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा गया।

- खराब भूजल क्षेत्र (लवणता, फ्लोराईड व नाईट्रेट)
- ऐसे नीचे स्थान/प्रक्षेत्र जहाँ ज्यादा पानी एकत्रित होने से फसल बर्बाद होती हो
- गिरते भूजल स्तर क्षेत्र

भूजल पुनर्भरण तकनीकियां

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधाान संस्थान द्वारा रिचार्ज शाफ्ट एवं रिचार्ज कैविटी दो संरचनाओं का विकास किया गया। जिनका प्रयोग कृषक स्तर पर भूजल पुनर्भरण हेतु किया जा सकता है। इन संरचनाओं की प्रतिस्थापना उन नीची जमीनों (खेतों) में की जा सकती है जहाँ आस–पास के 30–40 हैक्टर क्षेत्र का पानी इकट्ठा होता हो। काफी समय तक पानी खड़ा रहने से धान की फसल खराब हो जाती है या कभी–कभी सर्दी के मौसम में जलमग्नता से गेहूँ की फसल मर जाती है। खराब भूजल क्षेत्रों में भी इनके प्रयोग द्वारा भूजल लवण सान्द्रता कम की जा सकती है।

रिचार्ज शाफ्ट

रिचार्ज शाफ्ट की स्थापना करने के लिये सर्वप्रथम ड्रिलिंग मशीन द्वारा 45 सेंमी. व्यास का बोर छिद्र करते हैं। बोर छिद्र की गहराई इस बात पर निर्भर करती है कि उस क्षेत्र में रेत की परत (जो लगभग 10 मी. मोटी हो) किस गहराई पर उपस्थित है। उसके बाद 12.5 सेंमी. व्यास की उच्च दबाव सहनशक्ति वाली पीवीसी

पाईप को बोर हुए छिद्र के ठीक मध्य में डालते हैं और बोर के शेष भाग को 1.5–2.0 सेंमी. व्यास की बजरी से भर देते हैं। शाफ्ट के ऊपर 1.65 मी. गुणा 1.65 मी. गुणा 1.8 मी. माप का गड्ढा बनाकर उसे विभिन्न फिल्टर पदार्थों जैसे रेत, बजरी एवं बोल्डर (पत्थर) की क्रमशः 50, 50 एवं 50 सेंमी. मोटी परत डालकर भर देते हैं, जिसे छन्नक इकाई कहते हैं।

रिचार्ज शाफ्ट की डिजाइन का उल्लेख विस्तारपूर्वक चित्र 1 में किया गया है। वर्षा जल अथवा नहर के पानी को रिचार्ज संरचना में डालने से पहले इस छन्नक इकाई द्वारा फिल्टर करना अत्यन्त आवश्यक है वरना वर्षा जल के साथ आने वाली चिकनी मिट्टी के कण संरचना एवं पीवीसी छिद्रों (जाली) को अवरूद्व कर सकते हैं जिससे पुनर्भरण संरचना की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। पूरी संरचना का प्रदर्शन छन्नक ईकाई की कार्य कुशलता पर निर्भर है। अतः किसानों को इसके रखरखाव के बारे में प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है ताकि संरचना प्रभावी रूप से कार्य कर सके।

रिचार्ज कैविटी

यह कैविटी ट्यूबवैल जैसी संरचना है, जिसका उपयोग एकत्रित वर्षा या अधिशेष नहरी जल को जलभृत तक कम समय तथा अधिक मात्रा में पहुँचाकर भूजल रिचार्ज हेतु किया जाता है। यह संरचना असमय भारी वर्षा होने की दशा में फसलों को पानी से डूबकर खराब होने से भी बचाता है तथा खराब भूजल की गुणवत्ता में सुधार करने में भी सहायता करती है। चूंकि बरसात का पानी पुनर्भरण हेतु प्रयोग होता है जिसमें बहुत भौतिक अशुद्धियाँ जैसे लकड़ी, प्लास्टिक, रेत, मिट्टी इत्यादि मौजूद रहती है, जिन्हे यदि पुनर्भरण जल के साथ जाने दिया गया तो पूरी संरचना को अवरूद्व कर सकते हैं। इसलिए रिचार्ज कैविटी में टयूबवैल के ऊपर एक छन्नक इकाई का निर्माण करते हैं, जिसमें बड़ी बजरी, छोटी बजरी तथा रेत का प्रयोग किया जाता है जिसका विवरण ऊपर रिचार्ज शाफ्ट वाले अनुच्छेद में किया गया है। रिचार्ज कैविटी का निर्माण करने के लिए मशीन द्वारा ड्रिलिंग की जाती है। ड्रिलिंग तब तक जारी रहती है जब तक रेत की 10–15 मीटर मोटी परत तथा उसके ऊपर गढ़ (क्ले लेयर) न मिल जाये। रेत को पम्प द्वारा बाहर निकालकर कैविटी बनाई जाती है तथा उसके ऊपर स्थित गढ़ उसे स्थायित्व प्रदान करती है। रिचार्ज कैविटी से कभी–कभी पानी भी निकाला जा सकता है, इससे कैविटी की सफाई हो जायेगी। कैविटी हमेशा संतृप्त रेत क्षेत्र में बनती है। संरचना की डिजाइन का वर्णन चित्र 2 में किया गया है। किसान के खेत पर प्रतिस्थापित भूजल पूनर्भरण संरचना को चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है।

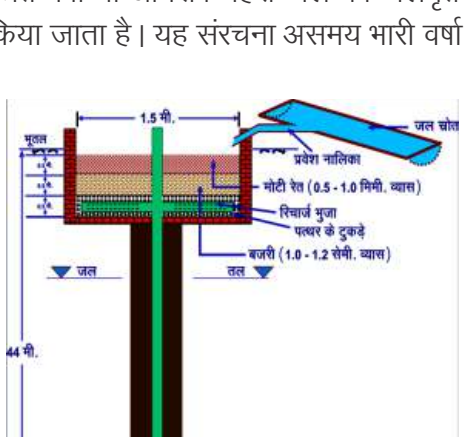

चित्र 1:रिचार्च कैविटी की डिजाइन का रेखांकित वर्णन

छन्नक इकाई

कृत्रिम भूजल पुनर्भरण मुख्यतः रिचार्ज शाफ्ट एवं रिचार्ज कैविटी इत्यादि संरचनाओं के प्रयोग द्वारा किया जाता है। प्रक्षेत्र अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इनके कारगर उपयोग में सबसे बड़ी बाधा प्रभावी छन्नक इकाई का अभाव है। ऐसा देखा गया है कि प्रभावी छन्नक इकाई की अनुपस्थिति में इन पुनर्भरण

चित्र 2. कृषक प्रक्षेत्र पर स्थापित भूजल पूनर्भरण संरचना का दृश्य

संरचनाओं का इष्टतम लाभ नहीं मिल पाता है। भूजल पुनर्भरण संरचनाओं में प्रयोग होने वाली वर्टिकल छन्नक इकाई में प्रयुक्त रेत की परत के छिद्रों के अवरूद्ध होने पर उसे साफ करने में व्यवहारिक समस्या देखी गयी। यदि रेत की ऊपरी परत को साफ न किया जाय तो पुनर्भरण दर बहुत कम हो जाती है तथा संरचना का इष्टतम लाभ नहीं मिल पाता है (चित्र 3)। इसमें सुधार करते हुए नये स्थानों पर प्रतिस्थापित भूजल पुनर्भरण इकाईयों में वर्टिकल छन्नक इकाई के स्थान पर क्षैतिज छन्नक इकाई का प्रयोग किया गया। क्षैतिज छन्नक इकाई में वर्टिकल की तरह ही एक चैम्बर बनाया गया परन्तु इसमें रेत, बजरी अथवा पत्थरों का प्रयोग नहीं किया गया अर्थात चैम्बर खाली था। संरचना की पाईप लगभग 2.5 मीटर ऊपर जमीन तक लाकर, ऊपर एवं नीचे से 0.5 मीटर छोड़कर शेष भाग को छिद्रयुक्त करके उसके ऊपर नायलॉन अथवा जूट बोरी को लपेट दिया गया (चित्र 4)। रिचार्ज कैविटी (नयी एवं बंद पड़ी) संरचनाओं के मूल्यांकन से ज्ञात हुआ कि यदि छन्नक इकाई प्रभावी रूप से कार्य करे तो भूजल पुनर्भरण दर 6–10 ली./सेकण्ड प्राप्त किया जा सकता है।

भूजल पुनर्भरण का भूजल गुणवत्ता पर प्रभाव

वर्षा जल अथवा अतिरिक्त नहरी जल का कृत्रिम भूजल पुनर्भरण का भूजल गुणवत्ता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन विभिन्न परियोजनाओं के अंतर्गत किया गया। इसके लिए कृषक प्रक्षेत्र पर रिचार्ज संरचनाएं लगाई गयी तथा समय–समय पर संरचनाओं से भूजल के नमूने एकत्रित कर उनका विश्लेषण किया गया। उदाहरण के तौर पर बाम्बर हेड़ी गाँव में प्रतिस्थापित भूजल पुनर्भरण ईकाई से एकत्रित नमूनों की वैद्युत चालकता एवं आरएससी व भूजल स्तर के बदलाव को (चित्र 5) में दर्शाया गया है।

चित्र 3. अवसाद के कारण अवरुद्ध रेत, बजरी एवं पत्थरों वाली छन्नक ईकाई

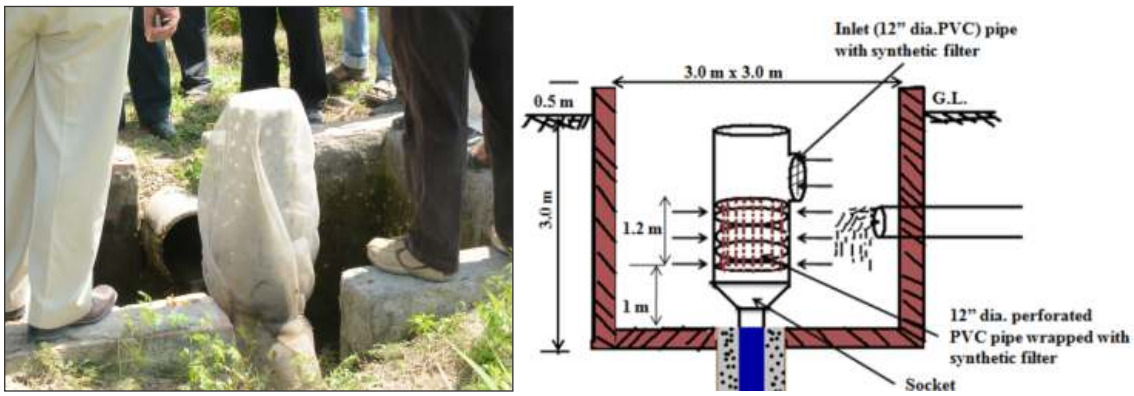

चित्र 4. रेत, बजरी एवं पत्थरों वाली छन्नक ईकाई में सुधार

चित्र 5 का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि भूजल पुनर्भरण का भूजल स्तर एवं गुणवत्ता दोनों पर प्रभाव पड़ता है। वर्षा जल के पुनर्भरण के परिणामस्वरूप विभिन्न स्थानों पर प्रतिस्थापित संरचनाओं के नीचे 2.32 मीटर से 3.16 मीटर तक की भूजल स्तर में वृद्धि दर्ज की गई। इसके अतिरिक्त वर्षा जल के मिश्रण से भूजल में लवणों की सांद्रता में भी कमी देखी गई। दो वर्षों के भूजल पुनर्भरण के दौरान लवणता एवं क्षारीयता में क्रमशः लगभग 1.36 डेसीसीमन्स/मीटर एवं 1. 33 मिली तुल्य/लीटर की कमी देखी गई। पंजाब एवं हरियाणा के कुछ अन्य स्थानों पर प्रतिस्थापित संरचनाओं के प्रभाव को तालिका 1 में दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, गाँव सावंत जिला करनाल में प्रतिस्थापित रिचार्ज संरचना ने वर्ष 2014 में भारी वर्षा होने की दशा में लगभग 1.5 हैक्टर प्रक्षेत्र में फसल को खराब होने से बचाया। संरचना के आस–पास की जगह नीची होने के कारण जब भी भारी वर्षा होती थी, यहाँ लगभग 30–40 एकड़ का पानी एकत्रित हो जाता था तथा इस 1.5 हैक्टर की फसल बुरी तरह बर्बाद होती थी। इस प्रकार धान एवं गेहूँ की फसल खराब होने से बचाकर रुपये 81000 की किसान की अतिरिक्त आय हुई (तालिका 2)।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भूजल पुनर्भरण संरचना का भूजल प्रबन्धन में महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। वर्षा जल का अधिक से अधिक मात्रा में पुनर्भरण द्वारा लवणों की सांद्रता को कम करके भूजल

तालिका 1. प्रतिस्थापित पुनर्भरण संरचना का भूजल गुणवत्ता पर प्रभाव

गाँव/जिला	वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर)			अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (मिलीतुल्य/लीटर)		
	मई/जून	जुलाई/अगस्त	अक्टूबर/नवम्बर	मई/जून	जुलाई/अगस्त	अक्टूबर/नवम्बर
नबियाबाद (करनाल)	1.9	1.1	0.5	6.0	2.4	0.2
पाजूकला (जीन्द)	1.2	0.9	0.5	5.6	3.4	0.6
दूसैन (कैथल)	1.4	1.1	0.5	6.7	3.9	2.1
नेवल खुर्द (करनाल)	1.3	0.7	1.1	3.7	2.3	1.0
पाजूकला (जीन्द)	1.7	0.6	1.5	4.4	0.7	2.1
दूसैन (कैथल)	1.0	0.8	1.1	6.9	3.4	2.6
जोधपुर (पटियाला)	2.0	1.7	1.1	7.1	3.4	3.2
बुद्धमोर (पटियाला)	1.3	1.1	1.1	4.8	3.0	3.1

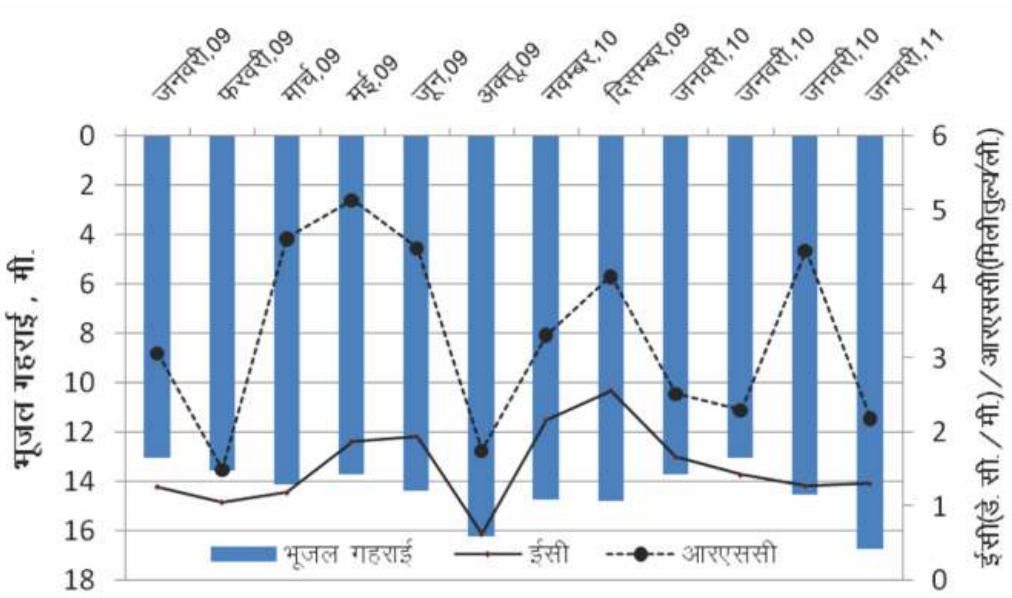

चित्र 5. बाम्बरहेड़ी गाँव में प्रतिस्थापित भूजल पुनर्भरण ईकाई का भूजल गहराई एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

तालिका 2. प्रतिस्थापित पुनर्भरण संरचना द्वारा धान एवं गेहूँ की फसल बचाकर अतिरिक्त आय

फसल	क्षेत्रफल (हैक्टर)	बचाव (%)	बची हुई फसल से अतिरिक्त उपज (कुंटल)	बची हुई फसल से अतिरिक्त आय (रुपये)
गेहूँ	0.5	100	20	28000
	1.0	50	20	28000
धान	0.5	70	21	21000
	1.0	25	12	12000
कुल				81000

गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। इन संरचनाओं का प्रयोग भारी एवं असमय वर्षा से धान तथा गेहूँ की फसलों को बचाने में भी किया जा सकता है। इस प्रकार जलनिकास की उचित व्यवस्था होने से किसान की अतिरिक्त आय एवं आजीविका सुरक्षा में वृद्धि हो सकती है।

समाप्त

अक्सर लोगों को आभास नहीं होता है कि
जब उन्होंने प्रयास बंद कर दिए,
उस समय वे सफलता के कितने करीब थे।

सतीश कुमार सनवाल, अरविन्द कुमार एवं जोगेन्द्र सिंह
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: satishsanwal@rediffmail.com

लवणग्रस्त मृदाओं के लिए धान, गेहूँ एवं सरसों की उन्नत प्रजातियाँ

लवणता एवं क्षारीयता की समस्या कृषि के विकास के लिये एक गंभीर चुनौती बन कर सामने आई है। विश्व में लगभग 1000 मिलियन हैक्टर भूमि इन समस्याओं से प्रभावित है, भारत वर्ष में इससे लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर भूमि पर कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। भारत में 3.77 मिलियन हैक्टर भूमि ऊसर ग्रसित (क्षारीयता) एवं 2.96 मिलियन हैक्टर भूमि लवणग्रस्त होने का अनुमान लगाया गया है। देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितीकी मृदा क्षेत्र विशेष रूप से शुष्क, अर्द्धशुष्क और अल्पार्द्र क्षेत्र लवणग्रस्त हैं। इन मृदाओं में सर्वाधिक प्रभावित राज्य उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा है। नए अनुमानों के अनुसार आगामी 50 वर्षों में जलाक्रांत एवं लवणीय क्षेत्रों के विस्तार में 2–3 गुणा वृद्धि की संभावना व्यक्त की गई है। विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं में इन समस्याओं का विस्तार सिंचित क्षेत्रों के 1.5 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक आंका गया है तथा यह भी आशंका व्यक्त की गई है कि समयानुसार इनकी रोकथाम के पर्याप्त उपाय न किये जाने पर, सिंचित क्षेत्रों में कई लाख हैक्टर भूमि शीघ्र ही गीले बंजर में परिवर्तित हो जाएगी। जलाक्रांत व लवणीय/क्षारीय मृदाओं के सुधार की आवश्यकता के महत्त्व को दर्शाने के लिये यह विवरण करना आवश्यक हो जाता है कि यदि 6.73 मिलियन हैक्टर भूमि को सुधार कर कृषि योग्य बना लिया जाये अथवा उनकी उत्पादकता को बढ़ा लिया जाये तो कम से कम 50–55 मिलियन टन अनाज का अतिरिक्त उत्पादन किया जा सकता है जो भारत की बढ़ती हुई आबादी की खाद्यान्न जरूरतों को पूरा करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। रासायनिक संशोधन और सिंचाई हस्तक्षेपों से लवण प्रभावित मिट्टी को पुनः कृषि योग्य बनाना एक विकल्प है, हालांकि इसमें उच्च लागत शामिल होती है जो आमतौर पर ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले गरीब और सीमांत किसानों की आर्थिक पहुँच से परे होती है। एक अन्य दृष्टिकोण फसल पौधों का अनुवांशिक सुधार हो सकता है जो सरल और किफायती है और पर्यावरणीय अवनति को भी रोकता है। पर्यावरण के बीच तालमेल का उपयोग करने के आधार पर प्रौद्योगिकियों और आनुवांशिक रूप से बढ़ाए गए पौधों के प्रकार को संशोधित करना एक तीसरा दृष्टिकोण सहक्रियात्मक दृष्टिकोण हो सकता है। इस दृष्टिकोण को अधिक प्रायोगिक, आर्थिक रूप से व्यवहार्य, कुशल और कम प्रदूषण उत्पन्न करने वाला माना गया है जो जबरदस्त क्षमता के कारण होता है। लवण प्रभावित क्षेत्रों में बेहतर प्रबंधन और कुशल सुधार कार्यक्रमों के लिए, प्रभावी और सतत् लाभ प्राप्त करने के लिए सभी तीनों दृष्टिकोणों का उपयोग करने की आवश्यकता है।

विभिन्न फसलों की विकसित लवण सहनशील किस्में

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल, द्वारा पिछले चार दशकों में किए गए प्रयासों ने दर्शाया है कि लवण सहिष्णु किस्मों का विकास भूमि सुधार के सफल जैविक दृष्टिकोण की कुंजी है। इस उद्देश्य के साथ, लवण प्रभावित मिट्टी में खेती के लिए उपयुक्त विभिन्न फसलों की लवण सहनशील किस्में विकसित की गई है। इन किस्मों को राजपत्र अधिसूचित केंद्रीय विविधता रिलीज कमेटी (सीवीआरसी) द्वारा देश में खेती के लिए भारत सरकार द्वारा जारी किया गया है। इन किस्मों ने कृषि उत्पादकता और किसानों की आजीविका बढ़ाने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव डाला है।

गेहूँ की लवण सहनशील प्रजातियाँ

केआरएल 1–4: केआरएल 1–4 इस संस्थान द्वारा विकसित गेहूँ की प्रथम प्रजाति है। इस प्रजाति को केन्द्रीय प्रजाति जारी समिति ने वर्ष 1990 में जारी किया था। इसका कद बौना है एवं यह 130–137 दिनों में पक जाती है। इसके दानों का आकार मध्यम एवं रंग गेहुंआ है। यह प्रजाति विभिन्न रतुआ रोगों के लिये भी प्रतिरोधी गुण रखती है। सामान्य मृदाओं में यह किस्म 40 से 50 कुंटल प्रति हैक्टर एवं लवणग्रस्ति मृदाओं में 25 से 35 कुंटल प्रति हैक्टर तक उपज देने में सक्षम है। यह प्रजाति 7 डेसी./मी. तक की लवणता एवं 9.3 पीएच मान की ऊसरता को सहन कर सकती है। मुख्य रूप से यह प्रजाति उत्तरप्रदेश की लवणग्रस्त मृदाओं में उगाई जाती है। इसके अतिरिक्त राजस्थान की लवणग्रस्ति मृदाओं के लिये भी यह प्रजाति उपयोगी है।

केआरएल 19: केआरएल 19 इस संस्थान द्वारा विकसित दूसरी प्रजाति है। इस प्रजाति को वर्ष 2000 में जारी किया गया। यह प्रजाति 9.3 पीएच मान तक की क्षारीयता एवं 7 डेसी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति उन भूमियों में भी अच्छी उपज दे सकती है जहाँ भूमि तो अच्छी है परंतु भूजल खारा (ई.सी. 15–20 डेसी./मी. अथवा आर.एस.सी. 12–14 मिली तुल्यांक/लीटर) है। यह प्रजाति विभिन्न रतुआ रोगों के लिये भी प्रतिरोधी पाई गई है। यह प्रजाति सामान्य मृदा में भी अच्छी उपज (45–52 कुंटल/हैक्टर) देने में सक्षम है। लवणग्रस्त मृदाओं में इसकी उपज 25–35 कुंटल प्रति हैक्टर तक हो सकती है। यह प्रजाति मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश की लवणीय एवं क्षारीय भूमियों में उगाई जाती है।

केआरएल 210: केआरएल 210 एक मध्यम बौनी किस्म है। यह लगभग 142–144 दिनों में पक जाती है। इसके दानों का आकार मध्यम मोटा एवं रंग गेहुंआ है। यह प्रजाति भूरे एवं पीले रतुआ के लिये प्रतिरोधी गुण रखती है। सामान्य मृदाओं में यह किस्म 52 कुंटल प्रति हैक्टर एवं लवणग्रस्त भूमियों में 35 (27–37) कुंटल/हैक्टर तक की उपज दे सकती है। यह किस्म 6.5 डेसी./मी. तक की लवणता एवं 9.3 पीएच मान की ऊसरता को सहन कर सकती है। इस प्रजाति को पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश एवं राजस्थान की लवणग्रस्त भूमियों में उगाया जा सकता है। इन

गुणों के अतिरिक्त यह किस्म अनावृत्त कण्डवा (लूज स्मट) एवं करनाल बंट के लिये भी प्रतिरोधी गुण रखती है।

केआरएल 213: केआरएल 213 का कद मध्यम बौना है एवं यह लगभग 145 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। यह प्रजाति विभिन्न रतुआ, झुलसा एवं करनाल बंट जैसे रोगों के लिये प्रतिरोधक क्षमता रखती है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति 9.2 पीएच मान की क्षारीयता और 6.4 डेसी/मी. की लवणता को सहन कर सकती है। इसके अतिरिक्त यह किस्म उन भूमियों में भी अच्छी उपज दे सकती है, जहाँ भूजल खारा (वैद्युत चालकता 15 डेसी./मी. तथा अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट 12–14 मिली तुल्यांक/लीटर) होता है। इस किस्म के दाने गेहुंआ रंग एवं मध्यम आकार के होते हैं। लवणग्रस्त भूमि में दानों में प्रोटीन की मात्रा लगभग 11 प्रतिशत एवं दानों का हैक्टोलीटर भार 77 कि.ग्रा. होता है। यह किस्म सामान्य मृदाओं में भी 50 कुंटल/हैक्टर तक की उपज देने में सक्षम है।

केआरएल 283: इस किस्म को फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2018 में उत्तर प्रदेश की लवण प्रभावित मृदाओं हेतु जारी किया गया है। सामान्य स्थिति में यह किस्म 58–62 कुंटल/हैक्टर की दाना उपज देने में सक्षम है जबकि क्षारीय मृदाओं (पीएच मान 9.0–9.3) में इसकी उपज 45–48 कुंटल/हैक्टर आंकलित की गई है। यह प्रजाति 128–133 दिनों में पककर तैयार हो जाती है और 6.7 डेसीसीमनस/मी. तक लवण तनाव तथा पीएच मान 9.3 तक क्षारीय तनाव सहन करती है। यह विभिन्न रोगों और कीटों जैसे पीला, भूरा तथा काला रतुआ, करनाल बंट, एफिड एवं तना मक्खी के प्रति भी सहिष्णु है।

सरसों/राई

सी एस 52: इस किस्म को फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 1998 में हरियाणा, उत्तर प्रदेश और पंजाब की लवण ग्रस्त मृदा एवं जल और समय पर बिजाई के लिए जारी किया गया है। यह रोग प्रतिरोधी किस्म लगभग 130–132 दिनों में परिपक्व हो जाती है। इसके पौधों की लंबाई 170–175 सें.मी. और 1000 दानों का वजन 4.5–5.0 ग्राम है। इसकी उपज लवण प्रभावित मृदा (ईसी 9 डेसी./मी. तक) एवं क्षारीयता (पीएच मान 9.3

तक) में 15–16 कुंटल/हैक्टर और सामान्य मृदा एवं जल में 18–20 कुंटल/हैक्टर है तथा इसमें लगभग 37 प्रतिशत तेल की मात्रा है।

सी एस 54: फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2005 में इस किस्म को हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान की लवण ग्रस्त मृदा एवं जल और समय पर बिजाई के लिए जारी किया गया है। यह किस्म लगभग 121–125 दिनों में परिपक्व हो जाती है। यह किस्म रोग प्रतिरोधी है तथा इसमें तैला (एफिड) का प्रकोप भी कम होता है। इसके पौधों की लंबाई 160–170 सेंमी. और 1000 दानों का वजन 5.0–5.5 ग्राम है। इसकी उपज लवण प्रभावित मृदा (ईसी 9 डेसी./मी. तक) एवं क्षारीयता (पीएच मान 9.3 तक) में 16–19 कुंटल/हैक्टर और सामान्य मृदा एवं जल में 20–24 कुंटल/हैक्टर है तथा इसमें लगभग 38 प्रतिशत तेल की मात्रा है।

सी एस 56: यह किस्म फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2008 में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान की लवण ग्रस्त मृदा एवं जल और पछेती बिजाई (15 नवंबर तक) हेतु जारी की गई है। इसमें लगभग 39 प्रतिशत तेल की मात्रा है। लवण प्रभावित मृदा (ईसी 9 डेसी./मी. तक) एवं क्षारीयता (पीएच मान 9.3 तक) में 16–19 कुंटल/हैक्टर और सामान्य मृदा एवं जल में इसकी उपज 22–26 कुंटल/हैक्टर है तथा यह लगभग 132–135 दिनों में परिपक्व हो जाती है। इसके पौधों की लंबाई 198–202 सेंमी. और 1000 दानों का वजन 4.5–5.0 ग्राम है। यह किस्म पादप रोगों एवं तैला (एफिड) के लिए प्रतिरोधी है।

सी एस 58: इसको फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2017 में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, और पंजाब की लवणग्रस्त मृदा एवं जल तथा समय पर बिजाई (अक्टूबर तक) हेतु जारी किया गया है। लवण प्रभावित मृदा (ईसी 11 डेसी./मी. तक एवं जल ईसी 12 डेसी./मी. तक) और क्षारीयता (पीएच मान 9.4 तक) में इसकी उपज 20–22 कुंटल/हैक्टर और सामान्य मृदा एवं जल में 26–28 कुंटल/हैक्टर है तथा इसमें लगभग 40 प्रतिशत तेल की मात्रा है। इसमें तैला (एफिड) का प्रकोप कम होता है तथा फफूंदी एवं जीवाणु जनित रोगों के लिए भी यह किस्म प्रतिरोधी है। इसके पौधों की लंबाई 180–185 सेंमी. और 1000

दानों का वजन 5.0–5.5 ग्राम है। यह लगभग 130–135 दिनों में परिपक्व हो जाती है।

सी एस 60: इस किस्म को फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2018 में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान की लवणग्रस्त मृदा एवं जल और समय पर बिजाई (15–25 अक्टूबर तक) हेतु जारी किया गया है। इसकी उपज लवण प्रभावित, मृदा (ईसी 12 डेसी./मी. तक एवं जल ईसी 16 डेसी/मी. तक) और क्षारीयता (पीएच मान 9.5 तक) में 20–22 कुंटल/हैक्टर और सामान्य मृदा एवं जल में 25–29 कुंटल/हैक्टर है तथा इसमें लगभग 41 प्रतिशत तेल की मात्रा है। यह किस्म लगभग 125–132 दिनों में परिपक्व हो जाती है। इसके पौधों की लंबाई 182–187 सेंमी. और 1000 दानों का वजन 5.0–5.2 ग्राम है। यह किस्म अल्टरनेरिया ब्लाईट, सफेद रतुआ, पाउडरी और डाउनी मिल्डयू (फफूंदी), स्टैग हेड एवं स्क्लेरोटिनिया तना गलन के लिए प्रतिरोधी है तथा इसमें तैला (एफिड) का प्रकोप भी कम होता है।

धान की लवण सहनशील प्रजातियाँ

बासमती सी एस आर 30: सीएसआर 30 विश्व की पहली लवण सहनशील बासमती प्रजाति है। इस किस्म को फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2001 में लवणग्रस्त मृदा एवं जल के लिए जारी किया गया है। यह किस्म लगभग 154–156 दिनों में परिपक्व हो जाती है। इसके पौधों की लंबाई 155.158 सेंमी. है। इसके दानों का आकार बासमती की तरह है। यह किस्म सामान्य मृदा में 30 कुंटल/हैक्टर एवं लवणीय मृदा में 20 कुंटल/हैक्टर तक उपज देने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति 9.5 पीएच मान की क्षारीयता और 7.0 डेसी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है।

सी एस आर 36 : फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2005 में इस किस्म को हरियाणा, उत्तर प्रदेश, और पुडुचेरी की लवणग्रस्त मृदा के लिए जारी किया गया है। इसके पौधों की लंबाई 110 सेंमी. है। यह किस्म लगभग 135 दिनों में परिपक्व हो जाती है। इसके दाने लम्बे एवं पतले आकार के होते हैं। यह प्रजाति 9.8 पीएच मान की क्षारीयता और 11.0 डेसी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है। सामान्य

मृदा में इसकी उपज 65 कुंटल/हैक्टर एवं लवणीय मृदा में 40 कुंटल/हैक्टर तक है।

सी एस आर 43 : फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2011 में इस किस्म को उत्तर प्रदेश की लवण ग्रस्त मृदा एवं जल के लिए जारी किया गया है। इसके पौधों का कद लगभग 95 सेंमी. होता है तथा यह किस्म लगभग 110 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। यह प्रजाति 9.8 पीएच मान की क्षारीयता और 11.0 डेसी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है। सामान्य मृदा में इसकी उपज 65 कुंटल/हैक्टर एवं लवणीय मृदा में 40 कुंटल/हैक्टर तक है।

सी एस आर 46 : फसल मानक अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति (सीवीआरसी) द्वारा वर्ष 2011 में इस किस्म को उत्तर प्रदेश की लवणग्रस्त मृदा एवं जल के लिए जारी किया गया है। इसके पौधों का कद लगभग 110 सेंमी. होता है तथा यह किस्म लगभग 125–135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने लम्बे एवं पतले आकार के होते हैं। यह प्रजाति 9.8 पीएच मान की क्षारीयता और 10.0 डेसी./मी. की लवणता को सहन कर सकती है। सामान्य मृदा में इसकी उपज 65 कुंटल/हैक्टर एवं लवणीय मृदा में 35.5 कुंटल/हैक्टर तक है।

समाप्त

हर बात में धीरज रखें, खासकर अपने आप से।
अपनी कमियों को लेकर धैर्य न खोएं,
तुरंत उनका समाधान करना शुरू करें।

अजित सिंह खरब, विष्णु कुमार, दिनेश कुमार, अनिल खिप्पल, जोगिन्द्र सिंह,
सुधीर कुमार, पूनम जसरोटिया, चुन्नीलाल एवं जी॰पी॰ सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: askharub@gmail.com

लवणीय एवं क्षारीय भूमि के लिए जौ की लाभदायक उन्नत खेती

जौ की फसल राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब आदि राज्यों में उगाई जाती है। जौ की फसल इन क्षेत्रों में मुख्यतः खाद्य, माल्ट एवं पशु चारा के लिए उगायी जाती है। इस बदलते हुये जलवायु में जौ की खेती एक महत्वपूर्ण समाधान है। जौ की फसल अन्य अनाज फसलों की अपेक्षा कम पानी, कम खाद एवं कम शाकनाशी और कीटनाशकों के उपयोग में भी अच्छा उत्पादन देती है। जौ की फसल को वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है एवं क्षारीय और लवणीय भूमि के लिये यह वरदान है। जौ प्राकृतिक रूप से लवणता के प्रति सहनशील फसल है। कुछ विकसित प्रजातियां अधिक सहनशील होती है। आज की भाग दौड़ भरी जिंदगी में जौ स्वास्थ्य के लिये भी उपयोगी है एवं जौ का लगातार उपयोग मधुमेह बीमारी में भी आरामदायक है। जौ की खेती से अच्छी उपज लेने के लिये उच्च उत्पादक एवं रोगरोधी किस्मों का उपयोग अत्यंत आवश्यक है।

जौ की उन्नत उत्पादन तकनीकी

जौ के उन्नत उत्पादन के लिये सबसे पहले उपयोगिता के आधार पर उच्च उत्पादन एवं रोगरोधी किस्मों का चयन करना चाहिए। बिजाई के लिये जौ की किस्म का बीज अच्छी गुणवत्ता का होना चाहिए। इस बीज की अनुवांशिक शुद्धता लगभग 99 प्रतिशत एवं बीज अन्य शाकों, फसलों रहित होना चाहिए। बिजाई के लिये उपयोग किये जाने वाला बीज कीटमुक्त होना अत्यंत आवश्यक है।

बीजोपचारः उच्च उत्पादन एवं अच्छे जमाव के लिये बीज को उपचारित करना बेहद जरूरी है। बीज उपचार से खुली एवं बंद कंगियारी की रोकथाम में मदद मिलती है। बीज उपचार के लिए टेबुकोनाजोल 1 ग्राम/किग्रा. अथवा कार्बोक्सिन/थाईरम अथवा वीटावेक्स का उपयोग किया जा सकता है।

बीज की मात्रा एवं दूरीः बीज की दर 100 किग्रा./हैक्टर तथा कतारों के बीच की दूरी 23 सेंमी. (माल्ट जौ के लिए 18 सेंमी.) रखनी चाहिए।

उर्वरक प्रबन्धः जौ के लिये बहुत कम खाद की जरूरत होती है। अधिक खाद डालने से फसल गिर जाती है तथा उत्पादन में कमी आ जाती है।

नाइट्रोजन	60 किग्रा./हैक्टर, लवणीय एवं क्षारीय भूमि के लिए 75 किग्रा./हैक्टर (माल्ट जौ 90 किग्रा./हैक्टर) (आधी खुराक बुवाई के समय एवं आधी पहली सिंचाई पर देनी चाहिए)
फॉस्फोरस	40 किग्रा./हैक्टर (पूरी मात्रा बुवाई के समय)
पोटाश	20 किग्रा./हैक्टर (पूरी मात्रा बुवाई के समय)

तालिका 1. जौ की उन्नत प्रजातियाँ

उपयोग	सिंचित/बारानी	किस्म	औसत उपज (कुण्टल/हैक्टर)	अधिकतम उपज (कुण्टल/हैक्टर)
उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों के लिए				
खाद्य के लिए	समय से बुवाई एवं सिंचित	बी.एच. 902	49.7	61.6
		बी.एच. 946	61.9	66.3
	समय से बुवाई एवं बारानी	आर.डी. 2624	24.8	38.6
		आर.डी. 2660	24.3	34.1
माल्ट के लिए	समय से बुवाई एवं सिंचित	डी.डब्ल्यू.आर.यु.बी. 52	45.1	58.4
		डी.डब्ल्यू.आर.बी. 92	49.8	69.0
		डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101	50.1	67.4
		आर.डी. 2849	50.9	69.2
		डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123	48.7	67.3
देर से बुवाई	एवं सिंचित	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 73	38.7	53.1
		डी.डब्ल्यू.आर.यु.बी. 64	40.5	61.2
		डी.डब्ल्यू.आर.बी. 91	40.6	58.9
छिलका रहित	समय से बुवाई एवं सिंचित	करन 16	29.5	50.5
उत्तर–पूर्वी मैदानी भागों के लिए				
खाद्य के लिए	समय से बुआई एवं सिंचित	एच.यु.बी. 113	43.3	63.3
		डी.डब्ल्यू.आर.बी. 137	37.9	53.6
		के 551	37.6	49.6
		के 603	29.0	38.4
		के 560	30.4	46.4
छिलका रहित	समय से बुवाई एवं सिंचित	गीतांजलि (के 1149)	21.3	27.8
मध्य क्षेत्र के लिये				
खाद्य के लिए	समय से बुवाई एवं सिंचित	डी.डब्ल्यू.आर.बी. 137	42.6	67.4
		बी.एच. 959	49.9	67.5
		आर.डी. 2786	50.2	61.4
		पी.एल. 751	47.3	64.1
द्विउद्देशीय	समय से बुवाई एवं सिंचित	आर.डी. 2715	26.3 (दाना)	177.6 (चारा)
पर्वतीय क्षेत्रों के लिए				
खाद्य के लिए	समय से बुवाई एवं बारानी	बी.एच.एस. 400	32.7	58.7
		वी.एल.बी. 118	30.8	50.0
द्विउद्देशीय		बी.एच.एस. 380	20.9 (दाना)	49.4 (चारा)
छिलका रहित		बी.एच.एस. 352	21.9	38.0
लवणीय एवं क्षारीय भूमियों के लिए				
खाद्य के लिए	समय से बुवाई एवं सिंचित	आर.डी. 2907	35.5	46.0
		आर.डी. 2794	29.9	43.3
		आर.डी. 2552	38.4	45.9
		एन.डी.बी. 1173	35.2	46.2

सिंचाईः जौ की फसल मे अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, लगभग 2–3 सिंचाई सामान्य परिस्थितियों में उपयोगी है।

पहली सिंचाई	बुवाई के 30–35 दिन बाद
दूसरी सिंचाई	बुवाई के 65–70 दिन बाद
तीसरी सिंचाई	बुवाई के 90–95 दिन बाद

खरपतवार नियंत्रण

चौड़ीपत्ती के लिए	मेटसल्फ्युरोन (8 ग्राम) अथवा 2, 4–डी (500 ग्राम)
संकरीपत्ती के लिए	पीनाक्साडेन (400 ग्राम)

उपरोक्त शाकनाशकों को बुवाई के 30–35 दिन बाद 120–200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करना चाहिए।

रोग एवं कीट प्रबन्ध

पीला रतुआ	प्रोपिकोनाजोल (टिल्ट 20 ई.सी.) 500 मिली./500 लीटर पानी/हैक्टर प्रयोग करें
चेपा या माहू	रोगोर 2 मि.ली./लीटर अथवा इमिडाक्लोप्रिड 200 की 100 मिली./हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए।

बीमारियों का प्रबंधन

खुली एवं बंद कंगियारीः कंगियारी से बचाव के लिए बीज उपचारित करें। इसके अतिरिक्त बीज का धूप उपचार भी किया जा सकता है। मई–जून के महीने में बीज को चार घंटे तक पानी में डालकर तपती धूप में 10–12 घंटे रखें। इसके बाद इसे छानकर सुखा लें एवं खुले स्थान पर भंडारण करें। खुली कंगियारी से बचाव के लिए 2 ग्राम वीटावैक्स या बावीस्टीन से एक किलोग्राम बीज उपचारित करें। बंद कंगियारी के नियंत्रण हेतू थाईरम तथा बावीस्टीन/वीटावैक्स को 1:1 के अनुपात में मिलाकर 2.5 ग्राम/किलोग्राम अथवा रेक्सिल 1 ग्राम/किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करें।

रतुआ एवं झुलसा रोगः सहायक वातावरण में ये दोनों बीमारियां आग की तरह फैलती है और दोनों ही बहुचक्रीय बीमारियां हैं। इन बीमारियों से बचाव के लिए प्रतिरोधी प्रजातियों को प्राथमिकता देनी चाहिए एवं इसके लिए बहुत सी प्रतिरोधी प्रजातियाँ उपलब्ध हैं।

चेपा या माहू (एफिड): जौ की फसल में चेपा से काफी हानि होती है। इसके लिए रोगोर 2 मिली./लीटर अथवा इमिडाक्लोप्रिड 200 की 20 ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि कीट का संक्रमण बहुत अधिक हो तो 15 दिन बाद दोबारा छिड़काव करें।

दीमकः दीमक के प्रबंधन हेतु क्लोरपाईरिफॉस की 4.5 मिली. मात्रा से एक किलोग्राम बीज उपचारित करें। दीमक प्रभावित इलाकों में मेड़ पर गेहूँ की फसल पर विशेष ध्यान देना चाहिए। खड़ी फसल वाले खेतों में दीमक के उपचार हेतु क्लोरपाईरिफॉस की 3 लीटर/हैक्टर की दर से 20 किलोग्राम बालू या बारीक मिट्टी एवं 2–3 लीटर पानी मिलाकर प्रभावित खेत में बुवाई के 15 दिन बाद बिखेरें।

मोल्या या सूत्रकृमि नियंत्रणः इसके नियंत्रण हेतू रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें जैसे आरडी 2052, आरडी 2035 एवं आरडी 2592 आदि।

अच्छे स्वास्थ्य के लिये जौ का प्रयोग

जौ स्वास्थ्य के लिये लाभकारी गुणों का भण्डार है। विशेषतः जौ कोलस्ट्रोल घटाने तथा रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में उपयोगी पाया जाता है। जौ से कई उत्पाद बनाये जा सकते हैं जो खाने में रोजाना प्रयोग में लाये जा सकते हैं। जौ का मुख्य उत्पाद माल्ट है, जिससे विभिन्न प्रकार के उर्जावर्धक पेय उत्पाद बनाये जाते हैं तथा कुछ दवाईयों में भी प्रयोग किया जाता है।

गर्मियों में पीने वाला पारंपरिक उत्पाद सत्तू जौ का ही बनता है। यह ठंडक प्रदान करता है इसलिये हमें ठंडाई के रूप में और अधिक प्रचलन में लाना चाहिये। सत्तू एक प्रकार से ठंडे पेय का प्रारूप है। जौ को 20 प्रतिशत तक गेहूँ में मिलाकर, पिसाकर, आटा बनाकर, रोटी बनाई जा सकती है। इसमें अधिक बीटा ग्लूकान होने से यह कोलस्ट्रोल एवं शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करता है। जौ में रेशे की मात्रा अधिक होने से पेट भी ठीक रहता है। मल्टीग्रेन आटे में भी जौ मिलाया जा सकता है तथा इसका लाभ लिया जा सकता है। जौ को विभिन्न उत्पाद जैसे बिस्किट या ब्रेड आदि बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। इसलिये बीमारियों से बचने तथा स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये जौ का प्रयोग करना चाहिये।

जौ की अनुबंध खेती

प्राचीन काल में जौ की खेती मुख्यतः आटा एवं सत्तू के लिए की जाती थी। साथ ही इसका प्रयोग जानवरों के आहार के रूप में भी किया जाता रहा है। जौ के दानों, भूसा एवं हरी फसल का प्रयोग दुधारू पशुओं को खिलाने में किया जाता है। जौ के अन्य महत्वपूर्ण उपयोगों में माल्ट आधारित चॉकलेट, शिशु आहार, दुग्ध आधारित पेय, बीयर एवं व्हिस्की आदि है। भारत में माल्ट बनाने के लिए जौ का प्रयोग पुराने जमाने से होता आ रहा है। सरकार की उदार आर्थिक नीतियों की वजह से अनेक ब्रेवरीज का भारत में आगमन हुआ जिसकी वजह से माल्ट की आवश्यकता में निरंतर वृद्धि हो रही है। आज जौ की वार्षिक औद्योगिक आवश्यकता लगभग 2.4 से 2.5 लाख मिट्रिक टन है और इसमें लगभग 10 प्रतिशत की दर से सालाना बढ़ोत्तरी हो रही है। इस समय देश में पैदा होने वाले जौ का 20–25 प्रतिशत भाग ही माल्ट बनाने के काम आ रहा है। इसकी मुख्य वजह उपयुक्त गुणवत्ता की कमी है। इसी वजह से अनेक कंपनियों ने देश के विभिन्न हिस्सों में जौ की अनुबंध खेती शुरू की है। कंपनी किसानों को माल्ट के लिए उपयुक्त किस्मों के बीज के साथ–साथ जौ की खेती की नई तकनीकें भी उपलब्ध कराती है। बुवाई से लेकर कटाई तक आवश्यकतानुसार किसानों को समुचित सुझाव देती है एवं आवश्यकतानुसार कृषि आवक जैसे उर्वरक, खरपतवारनाशी आदि भी उपलब्ध कराती है तथा कटाई के बाद किसानों से पूर्व निर्धारित कीमत पर जौ की खरीद भी करती है।

किसानों के मुख्य सवाल एवं जवाब

सवालः किसानों को जौ क्यों उगाना चाहिये ?

जवाबः जौ की औधोगिक एवं औषधीय माँग बढ रही है। कम लागत में अच्छी फसल होती है। इसलिये जौ उगाना फायदेमंद है।

सवालः जौ को विभिन्न स्थितियों में किस तरह के तापमान की जरूरत रहती है ?

जवाबः बढोतरी के लिये 12–15 डिग्री सेल्सियस तापमान होना चाहिये। अधिक तापमान से फूल एवं दाना बनना कम हो जाता है। कलियाँ भी कम हो जाती है, पौधा पीला पड़ जाता है तथा कई बार छोटे पौधे मर भी जाते हैं।

सवालः जौ की खेती के लिये किस तरह की मिट्टी चाहिये ?

जवाबः जौ को विभिन्न मृदाओं जैसे दोमट से रेतिली मिट्टी में उगाया जा सकता है, परन्तु अच्छी पैदावार के लिये बलुई दोमट हल्की मिट्टी होनी चाहिये जिसमें पानी खड़ा न रहे।

सवालः जौ के लिये खेत को कैसे तैयार करना चाहिये ?

जवाबः जौ को समतल क्यारी चाहिये। जुताई कम से कम होनी चाहिये। शुन्य जुताई या हैप्पी सीडर से बिजाई करनी चाहिये। इससे समय, ताकत एवं लागत में कमी आती है।

सवालः क्या जौ को क्षारीय तथा लवणीय भूमि में उगाया जा सकता है ?

जवाबः हाँ, जौ क्षारीय एवं लवणीय भूमि के प्रति सहनशील हैं। इसलिये यह इस प्रकार की भूमि में भी अच्छी उपज देता है।

सवालः कृपया करके खाद की मात्रा के बारे में बताएं।

जवाबः खाद्य जौ में नत्रजन की मात्रा 60 किग्रा. प्रति हैक्टर तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा 30 एवं 20 किग्रा. प्रति हैक्टर है। माल्ट जौ में नत्रजन की मात्रा 90 किग्रा. प्रति हैक्टर है। लवणीय एवं क्षारीय भूमि में यह मात्रा 25 प्रतिशत बढा दी जाती है। दलहनी फसलों के बाद जौ लगाने पर 25 प्रतिशत नत्रजन कम कर दी जाती है।

सवालः जौ के क्या उपयोग है ?

जवाबः जौ को माल्ट बनाने, स्वास्थ्यवर्धक पेय जैसे मालटोवा, औषधीय उपयोग, पशुओं के लिये चारा एवं भूसा आदि में उपयोग किया जाता है।

सवालः जौ की कौन सी प्रजाति उगानी चाहिए ?

जवाबः अच्छी पैदावार के लिये नई अधिक पैदावार वाली, रोग रहित प्रजाति, उत्पादन स्थिति तथा उपयोग के हिसाब से प्रजाति को चुनना चाहिए।

सवालः माल्ट जौ के लिये कौन–कौन सी प्रजातियां हैं ?

जवाबः नई प्रजातियों में डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101, डी.डब्ल्यू.आर.बी.123, आर.डी. 2849, माल्ट जौ की प्रजाति है जो उत्तर पश्चिमी मैदानी भागों के लिये है।

सवालः खाद्य जौ की कौन–कौन सी प्रजातियां हैं ?

जवाबः खाद्य जौ में बी.एच. 946, बी.एच. 902, उत्तर पश्चिमी मैदानी भाग, डी.डब्ल्यू.आर.बी.137, एच.यु. बी.113, पूर्वी पश्चिमी मैदानी भाग, डी.डब्ल्यू आर.बी.137, बी.एच.959, आर.डी. 2749, मध्य क्षेत्र, वी.एल.बी. 118, बी.एच.एस. 400, पर्वतीय क्षेत्र के लिए संस्तुत की गयी है।

सवालः खाद्य एवं चारे के लिये कौन सी प्रजातियां हैं ?

जवाबः आर.डी. 2715, मध्यक्षेत्र, आर.डी. 2552, मैदानी भाग, बी.एच.एस.380, पर्वतीय क्षेत्र के लिए।

सवालः लवणीय क्षेत्र के लिये कौन सी प्रजातियां हं ?

जवाबः आर.डी. 2794, एन.डी.बी.1173, आर.डी. 2552।

सवालः छिलका रहित जौ की प्रजाति कौन सी हैं?

जवाबः करन 16, गीतांजली (के1149), मैदानी भाग, बी.एच.एस.352, पर्वतीय क्षेत्र।

सवालः बारानी क्षेत्र के लिये कौन सी प्रजातियां हैं?

जवाबः आर.डी. 2260, आर.डी. 2624, उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए, के 560, के 603, उत्तर–पूर्वी मैदानी भागों के लिए संस्तुत की गयी है।

सवालः जौ के बोने का उपयुक्त समय कौन सा हैं?

जवाबः उत्तर पूर्वी मैदानी भाग में 10 से 25 नवम्बर, उत्तर पश्चिमी मैदानी भाग में 2 से 20 नवम्बर, मध्य क्षेत्र में 25 अक्टूबर से 25 नवम्बर तक उपयुक्त समय है।

सवालः जौ के लिये बीज दर तथा कतार से कतार की दुरी क्या है ?

जवाबः खाद्य जौ के लिए 23 सेंमी., 100 किग्रा./हैक्टर, माल्ट जौ के लिए 18–20 सेंमी. ,100 किग्रा/हैक्टर।

सवालः जौ के काटने का समय एवं पैदावार बताएं ।

जवाबः जौ की कटाई तब करें जब दाने में नमी 12 प्रतिशत आ जाये। यह आमतौर पर अप्रैल के शुरू में काटा जाता है। इसकी पैदावार हल्की मिट्टी में 50–60 कुण्टल/हैक्टर तक आ जाती है।

समाप्त

हर दिन अच्छा ही हो यह जरूरी नहीं है,
पर हर दिन में कुछ न कुछ अच्छा जरूर होता है।

प्रवीण कुमार, कैलाश प्रजापत, अनिल कुमार, मनीष कुशवाहा[1] एवं शिवानी चहल
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail:pkumarcssri@gmail.com

लवणग्रस्त मृदाओं में आलू की उन्नत खेती

खाद्य उपयोग के आधार पर आलू विश्व में धान एवं गेहूँ के बाद तीसरी मुख्य खाद्य फसल है। विश्व में 1 अरब से भी ज्यादा लोग आलू का सेवन करते हैं। आलू का वैश्विक स्तर पर उत्पादन 375 मिलियन टन है। भारत आलू उत्पादन में 21.53 लाख हैक्टर क्षेत्रफल एवं 503 लाख टन उत्पादन के साथ चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। देश के 51 प्रतिशत लोग प्रतिदिन आलू का उपयोग करते हैं एवं आलू जनसंख्या वृद्वि के परिदृश्य में खाद्य सुरक्षा का एक महत्पूर्ण अंग है। भारत में आलू का लगभग 90 प्रतिशत क्षेत्रफल मैदानी इलाकों में है। आलू की खेती मुख्यतः सामान्य मृदा एवं सिंचाई के साथ की जाती है। अच्छे गुणवत्ता वाले सिंचाई जल की उपलब्धता में कमी के कारण निम्न गुणवत्ता सिंचाई जल का भी आलू में प्रयोग किया जा रहा है। हरियाणा में आलू उत्पादक क्षेत्र सुधरी हुई क्षारीय भूमि के अन्तर्गत है, जहाँ किसान आलू की अच्छी फसल ले रहे हैं। सामान्य तौर पर आलू लवणता के प्रति संवेदनशील होता है। आलू को लवणता के आधार पर मध्यम लवणता सहनशील श्रेणी में रखा गया है। वैश्विक स्तर पर किये गये शोध कार्यों के आधार पर पाया गया कि 2–4 डेसीसीमन्स/मीटर लवणता वाले सिंचाई जल के साथ सतही सिंचाई विधि द्वारा 75 प्रतिशत उपज प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार बूँद–बूँद सिंचाई विधि के साथ आलू को 3–4 डेसीसीमन्स/मीटर लवणता तक उपज में कम नुकसान के साथ उगाया जा सकता है। आलू आरंभिक अवस्था में लवणों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। अतः सम्भव हो तो शुरूआती अवस्था में अच्छी गुणवत्ता वाले पानी से सिंचाई करें। इसके अलावा आलू के लिए उपयुक्त जलवायु वाले लवण प्रभावित क्षेत्र उत्तक संवर्धन एवं ऐरोपोनिक्स जैसी तकनीकियों द्वारा बीज कंद उत्पादन करने में उपयोग में लाए जा सकते हैं।

फसल चक्र एवं आलू

आलू का 90 प्रतिशत क्षेत्रफल एवं 94 प्रतिशत उत्पादन मैदानी क्षेत्रों में है। आलू उत्पादकों के लिए फसल चक्र में आलू फसल सर्वोपरि है अतः अन्य फसलों का लगाना आलू की खुदाई पर निर्भर करता है, जो कि बाजार भाव व मौसम पर निर्भर है। आलू के बाद ग्रीष्मकाल में मुख्यतः, सब्जी, मूंग व चारे की फसल उगायी जाती है। वर्षा ऋतु में धान, चारा (ज्वार, मक्का, बाजरा) सब्जियाँ व हरी खाद प्रमुख है। महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ क्षेत्रफल परती भी रहता है। अनुसंधानों के आधार यह देखा गया कि आलू उत्पादकों के अलावा गेहूँ, धान व गन्ना उत्पादक भी आलू की फसल, बिना मुख्य फसल की पैदावार घटाए ले सकते हैं तथा अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। शरदकालीन गन्ने को आलू के साथ 1 : 1 या 1 : 2 अनुपात में अन्तःफसली खेती से न केवल आलू की सामान्य फसल 25 से 30 टन प्रति हैक्टर ली जा सकती है अपितु गन्ने की 10 से 15 प्रतिशत अतिरिक्त पैदावार भी होती है। ग्रीष्मकालीन गन्ने के साथ भी आलू सर्वोत्तम फसल है। फरवरी के अन्त तक आलू की खुदाई कर गन्ने की फसल को मार्च के प्रथम सप्ताह में समय से बुवाई की जा सकती है। गेहूँ–धान फसल चक्र में आलू की फसल को 60–75 दिन का समय मिल जाता है,

कुफरी पुखराज जैसी प्रजाति इतने कम समय में भी 20–25 टन/हैक्टर की उपज दे देती है। फसल चक्रों में आलू को दिया जाने वाला उवर्रक अगली फसल की पैदावार को भी बढ़ाता है। जहाँ जल निकास का अच्छा प्रबन्ध हो वहाँ आलू–सूरजमुखी–उड़द/लोबिया व आलू–लोबिया/फ्रैंन्चबीन–भिन्डी बहुत सफल चक्र है। इस प्रकार क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता तीनों बढ़ाये जा सकते हैं।

खेत की तैयारी

बीमारी, कीट व खरपतवार नियंत्रण के लिए गर्मियों में खेत की जुताई बहुत लाभकारी है। पलेवा आलू की बुवाई करने से 5–7 दिन पहले करना लाभकारी है। ऐसा करने से अंकुरण जल्दी व एक समान होता है। इससे पहले समतल खेत की एक गहरी जुताई अवश्य करें। इसके पश्चात् खेत 15–20 सेंमी. की गहराई तक अच्छी तरह तैयार किया जाना चाहिए, जोकि 2–3 बार हैरो या 3–4 बार जुताई में संभव है। बाद में एक या दो बार पाटा लगायें, जिससे खेत की नमी बनी रहे व खेत समतल हो जाये। ये कार्य ट्रैक्टर या बैल चालित यन्त्रों से आसानी से किया जा सकता है।

बुवाई का समय एवं पोषण प्रबंधन

निम्नलिखित प्रजातियों को भारत के मैदानी भागों में आवश्यकतानुसार अपनाया जा सकता है:

- अगेती (70–80 दिन): कुफरी सूर्या, कुफरी अशोक, कुफरी पुखराज।
- मध्यकालिक (90–100 दिन): कुफरी सदाबहार, कुफरी बहार, कुफरी ज्योति, कुफरी लालिमा और कुफरी पुखराज।
- पछेती (100–110 दिन): कुफरी बादशाह, कुफरी सिन्दूरी, कुफरी सतलज, कुफरी आनन्द ।
- प्रसंस्करण की प्रजाति (100–110 दिन): कुफरी चिप्सोना–1, कुफरी चिप्सोना–3, कुफरी हिमसोना एवं कुफरी फ्राईसोना।

आलू का बीज हमेशा विश्वसनीय संस्थाओं जैसे–राजकीय उद्यान विभाग से खरीदा जाना चाहिए। तीन–चार वर्षों में बीज बदल देना लाभकारी होता है। बुवाई के लिए 40–60 ग्राम वज़न वाले आलू कन्दों का उपयोग करना चाहिए। बुवाई से 10–12 दिन पहले बीज आलू शीतग्रह से निकाल लें और 24 घण्टे अभिशीतन कक्ष में रखें। ऐसा करने से बीज आलू का सड़ने से बचाव होगा। शीतग्रह से निकालने के पश्चात् अंकुरण के लिए बीज आलू को पतली तह में छायादार स्थान में फैला दें। बिना अंकुर वाले रोगी कन्दों को समय–समय पर निकालते रहें तथा बुवाई के समय इस प्रकार आलू को ले जायें ताकि अंकुर न टूटें।

बुवाई का सही समय तापमान पर निर्भर करता है। जिस समय अधिकतम तापमान 30–32 डिग्री सेल्सियस व न्यूनतम तापमान 18–20 डिग्री सेल्सियस हो, उस समय बुवाई करना अच्छा होता है। बीज आलू की प्रति हैक्टर 35–40 कुंटल आवश्यकता होती है। कूंड से कूंड की दूरी 60 सेंमी. व आलू से आलू की दूरी 20 सेंमी. रखनी चाहिए। बुवाई के समय शीघ्र अंकुरण के लिए बीज आलू पर 8–10 सेंमी. मिट्टी चढ़ाना ही पर्याप्त है। जबकि प्रसंस्करण के लिए न केवल प्रति हैक्टर अधिक उपज की आवश्यकता है बल्कि आलू की गुणवत्ता का भी ध्यान रखना होता है। अतः फसल प्रबन्ध में इस बात की आवश्यकता है कि कन्दों को हरा होने से बचाया जाए इसके लिए भोज्य आलू से थोडा हटकर गूल से गूल की दूरी 67.5 सेंमी. (27 इंच)

व पौधे से पौधे की दूरी 20 सेंमी. (8 इंच) रखी जानी चाहिए। इस प्रकार प्रति हैक्टर खेत में लगभग 75 हजार पौधे होंगें। चिप्सोना प्रजातियों को इस ज्यामिति पर लगातार लगाकर पाया गया कि चिप्स बनाने योग्य आलू का उत्पादन सर्वाधिक होता है। परन्तु अगर उत्पादन फ्रैंच फ्राईज उधोग के लिये है तो 55 हजार पौधे ही पर्याप्त है। जिसको किसान भाई गूल से गूल की दूरी 67.5 सेंमी. व पौधों से पौधों की दूरी 26.5 सेंमी. रखकर प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार अनायास सिंचाई पर होने वाला खर्च व आलू का हरापन भी कम होगा और आलू की उपज भी यथावत रहेगी। उपरोक्त दूरी पर आलू बिजने से कुल उत्पाादन का लगभग 70–80 प्रतिशत आलू प्रसंस्करण हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

वर्षा ऋतु में हरी खाद, मुख्यतः ढैंचा बोना बहुत उपयोगी है, यह 20–25 टन प्रति हैक्टर हरी खाद खेत को प्रदान करता है। इससे आवश्यक नाइट्रोजन की 25–30 प्रतिशत मात्रा घटाई जा सकती है तथा मिट्टी की जल धारण क्षमता भी बढ़ती है। इसका विकल्प 10–15 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद है। बुवाई के समय उर्वरक खाद का स्रोत कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट, सिंगल सुपर फॉस्फेट या डाई अमोनियम फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश या मिश्रित खाद (एनपीके) होना चाहिए। उर्वरक कूंडों में बीज आलू से 4–5 सेंमी. नीचे डालें ताकि ये बीज आलू के सीधे सम्पर्क में न आये व जडों के विकसित होते ही आसानी से उपलब्ध हो जाये। नाइट्रोजन की आधी मात्रा मिट्टी चढ़ाते समय यूरिया या कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट के रूप में दें। विभिन्न क्षेत्रों के लिए बुवाई के समय एवं उर्वरकों की संस्तुति इस प्रकार हैः

क्षेत्र	बुवाई का समय	तत्वों की मात्रा (किग्रा./हैक्टर)
पश्चिमी गंगा सिन्धु का मैदान	1–10 अक्टूबर	बुवाईः 90–120 नाइट्रोजन, 80 फास्फोरस, 100–120 पोटाश, मिट्टी चढ़ाने पर : 90–120 नाइट्रोजन
मध्य गंगा सिन्धु का मैदान	10–25 अक्टूबर	बुवाई : 90–120 नाइट्रोजन, 80 फास्फोरस, 100–120 पोटाश, मिट्टी चढाने पर : 90–120 नाइट्रोजन
पूर्वी गंगा सिन्ध का मैदान	25 अक्टूबर से 10 नवम्बर तक	बुवाई : 75 नाइट्रोजन, 60 फास्फोरस, 80 पोटाश, मिट्टी चढाने पर : 75 नाइट्रोजन
प्रसंस्करण प्रजातियों के लिए	15 अक्टूबर से 25 अक्टूबर तक	बुवाई : 135 नाइट्रोजन, 80 फास्फोरस, 150 पोटाश, मिट्टी चढ़ाने पर : 135 नाइट्रोजन

ये सारी क्रियाएं ट्रैक्टर या बैल चालित यन्त्रों से भली–भांति की जा सकती है। आजकल समय व मजदूरी की बचत के लिए यन्त्र जैसे – फर्टीड्रिल व प्लान्टर उपलब्ध हैं, जिससे खाद डालने व बुवाई का कार्य एक साथ किया जा सकता है। इनसे खाद व बीज आलू सही गहराई पर डाल सकते हैं।

जल प्रबंधन

आलू की फसल के लिए सिंचाई व जल निकास का समुचित प्रबंध होना चाहिए। पलेवा के बाद पहली सिंचाई, बुवाई के एक सप्ताह बाद करनी चाहिए। सिंचाई हल्की हो, किसी भी हालत में दो–तिहाई से अधिक गूल, पानी से न डूबे, अन्यथा पैदावार पर बुरा असर पडेगा व आलू हरा होगा। हर 8–10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहें व खुदाई से 10–15 दिन पहले सिंचाई बन्द कर दें ताकि फसल एक साथ तैयार हो सके तथा छिलका सख़्त हो जाए। पानी की कमी को ध्यान में रखते हुये किसान भाई आलू में

सिंचाई फव्वारा एवं ड्रिप विधि से करते हैं तो आलू में पैदावार के साथ–साथ प्रसंस्करण हेतु गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है।

खरपतवार नियंत्रण एवं मिट्टी चढ़ाना

आलू फसल की खाद एवं सिंचाई जरूरतें ज्यादा होने की वजह से इस फसल में खरपतवार नियंत्रण करना अति आवश्यक हो जाता है। इसके लिये जब आलू के पौधों की ऊंचाई 8–10 सेंमी. हो, तकरीबन 20–25 दिन बाद गुडाई करें, इससे घास की जडों में हवा लगकर सूख जायेंगी तथा काफी हद तक खरपतवार नियंत्रण सम्भव होगा। इसी समय खेत में बची हुई नाइट्रोजन की आधी मात्रा भी देकर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये। अगर किसी कारण से किसान भाई गुड़ाई करने एवं दूसरी बार मिट्टी चढ़ाने में असमर्थ हैं, तो वो रासायनिक दवाओं के प्रयोग से भी खरपतवारों से निजात पा सकता है। इसके लिये आलू बुवाई के बाद परन्तु जमाव से पहले मैट्रीब्यूजिन 0.5 किग्रा./हैक्टर या पैण्डीमिथेलिन 1.0 लीटर/हैक्टर. या आइसोप्रोटूरान 0.6 किग्रा./हैक्टर की दर से इस्तेमाल करें। इन दवाओं का पूरा फायदा लेने के लिये मिट्टी में समूचित नमी होनी अति आवश्यक है।

पादप संरक्षण

किसान भाइयों का ध्यान नवम्बर माह से ही बीमारियों की तरफ जाना चाहिए। अगेता झुलसा, पछेता झुलसा व फोमा मुख्य फंफूदजनित रोग है। अधिक नमी व कम तापमान पछेता झुलसा आने में मदद करता है। अतः आवश्यकतानुसार नवम्बर से 10 दिन के अन्तर पर किसान भाई 0.2 प्रतिशत मैन्कोजैब या प्रोपीनेब नामक फफूंदनाशक का छिडकाव करें। अगर पिछेता झुलसा आपकी फसल पर संक्रमण कर चुका है तब अकेले मैन्कोजैब की बजाय साइमोसानिल या फेनामिडोन युक्त मिश्रण का छिडकाव 0.30 प्रतिशत की दर से करें। मौसम को देखते हुए फफूंदनाशक का छिड़काव 8–10 दिन के अन्तराल पर दोहरायें क्योंकि प्रसंस्करण प्रजातियों में पछेता झुलसा के प्रति प्रतिरोधिता है। अतः फफूंदनाशक का छिड़काव अपने विवेक से आवश्यकता पड़ने पर ही करें। पत्तीभक्षक या कटुवा सुंडियों का प्रकोप अगर फसल में ज्यादा हो तो फफूंदनाशक में 0.2 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफॉस को भी मिला लें। रस चुसक कीड़े जैसे सफेद मक्खी, तेला, मोयला आदि के नियंत्रण के लिए ईमीडाक्लोप्रिड 0.3 मिली लीटर या एकतारा 0.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी के साथ प्रयोग करें।

चित्र 1. पछेता झुलसा रोग से ग्रसित पत्तियां

सतह जनित बीमारियों, जो कि फंफूदी या बैक्टीरिया से होती है से बचाव के लिए उपचारित बीज आलू का प्रयोग करना चाहिए। ये उपचार तीन प्रतिशत बोरिक अम्ल घोल में 30 मिनट तक बीज आलू को रखकर किया जाना चाहिए। यह उपचार बीज आलू को शीतगृह में रखने से पहले करें।

खुदाई, भंडारण व विपणन

आलू की खुदाई का कार्य बाजार की मांग व फसल अवधि देखकर किया जाना चाहिए, जिससे अधिक से

अधिक पैदावार व लाभ मिल सके। सामान्य फसल पत्तों के पीलेपन के साथ ही खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। पत्तों को काटकर आलू 12–15 दिन बाद उचित नमी देखकर खोदे जाने चाहिए। ये कार्य हाथ से, हल से व ट्रैक्टर चलित हामकटर व डिग्गर की सहायता से किया जा सकता है। मशीनों द्वारा समय की बचत व बिना आलू को नुकसान पहुँचाये खुदाई की जा सकती है। खुदाई के बाद आलू का ढेर छायादार स्थान पर लगाना चाहिए तथा कटा–सड़ा व गला आलू साथ–साथ छांट लें। आलू को हरा होने से बचाने के लिए चटाई या जूट की बोरियों से ढ़ककर रखें। आलू की ग्रेडिंग अवश्य करनी चाहिए, इस प्रक्रिया से बाजार भाव अच्छा मिलेगा। ग्रेडिंग हाथ की अपेक्षा ग्रेडर से बहुत कम समय में की जा सकती है। आलू वस्तुतः एक ऐसी फसल है जिसमें सभी मुख्य क्रियायें मशीनों द्वारा संभव है।

आलू का भण्डारण मई–जून तक छाया में ड़ेढ मीटर ऊँचा ढेर बनाकर, कम लागत के फूंस की छत से ढके गडढों में या केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान मॉडल भण्डारगृह में किया जा सकता है। इससे आलू में सिकुड़न, सड़न व गलन कम होता है। लम्बी अवधि तक आलू का भण्डारण शीतगृहों में ही किया जा सकता है। नई तकनीक को अपनाकर प्रत्येक किसान भाई आसानी से 35–40 टन/हैक्टर या इससे भी अधिक आलू की उपज ले सकते हैं। साथ ही अगर बेचते समय बाजार की मांग का ध्यान रखा जाये तो निश्चित ही अधिक लाभ होगा।

आलू की क्योरिंग एवं ग्रेडिंग

समाप्त

अवसर सूर्योदय की तरह होते हैं।
यदि आप ज्यादा देर तक प्रतीक्षा करते हैं
तो आप उन्हें गंवा बैठते हैं।

विनय कुमार मिश्र, सुनील कुमार झा, यशपाल सिंह,
टी॰ दामोदरन, सी॰एल॰ वर्मा, ए॰के॰ सिंह एवं संजय अरोडा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)
E-mail: vkmishra_63@yahoo.com

समन्वित कृषि प्रणाली द्वारा जलमग्न क्षारीय मृदा का प्रबंधन एवं किसानों की आय दोगुनी करने की एक सफल गाथा

उत्तर प्रदेश में लगभग 13.7 लाख हैक्टर भूमि क्षारीय है। ऐसी भूमियों की उत्पादकता बहुत की कम (1 टन/हैक्टर/वर्ष) होती है। इन भूमियों के सुधार हेतु केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, द्वारा विकसित जिप्सम आधारित तकनीकी के माध्यम से उत्तर प्रदेश में लगभग 8 लाख हैक्टर से अधिक क्षारीय भूमियों का सुधार किया जा चुका है। लेकिन प्रदेश में लगभग 2 लाख हैक्टर भूमि उच्च भूजल स्तर (2 मीटर से कम) एवं क्षारीयता (पीएच मान 9.5 से अधिक) दोनों समस्याओं से प्रभावित है ऐसी भूमियों में जिप्सम आधारित तकनीक प्रभावी नहीं है। जिप्सम डालने के बाद लवणों का निक्षालन नहीं होने से दोबारा क्षारीय भूमि बनने की संभावना बनी रहती है। इस प्रकार की भूमि मुख्यतः लखनऊ रायबरेली, बाराबंकी, सुल्तानपुर, अमेठी, कानपुर जिलों में मुख्य नहर के दोनों तरफ करीब 0.5 किमी. के दायरे में फैली हुई है। इसके प्रबंधन हेतु लखनऊ में शारदा नहर कमाण्ड क्षेत्र के किनारे प्रभावित गाँव पटवा खेड़ा (समेसी) का चयन किया गया। गाँव के राजस्व रिकार्ड के आधार पर वर्ष 1978 में नहर के आगमन से जल रिसाव के कारण दोनों तरफ की भूमियों का भूजल स्तर ऊपर आने लगा। परिणामस्वरूप भूमि की ऊपरी सतह पर लवण जमा हो गया। जल स्तर ऊपर आने और लवण की अधिकता के कारण परंपरागत आम, महुआ, नीम, शीशम के पेड़ सूखने लगे और धीरे–धीरे पूरी तरह समाप्त हो गये। लवणों की अधिकता एवं पीएच मान 9.5 से अधिक होने के कारण फसलें भी प्रभावित हो गयी। जबकि नहर आने से पहले यहाँ की भूमि उपजाऊ थी। प्रभावित भूमियों में वर्ष के 2 से 3 माह जलभराव तथा 9 से 10 माह तक जल स्तर 0.50 से 1 मीटर के बीच बना रहता है।

क्षारीय भूमि बनने के कारण

भूजल स्तर के साथ–साथ मृदा का रासायनिक गुण क्षारीय मृदा बनने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। जिन भूमियों में सोडियम कार्बोनेट एवं सोडियम बाईकार्बोनेट की मात्रा अधिक पाई जाती है वहाँ क्षारीय मृदा होने की संभावना अधिक रहती है। भूजल स्तर बढ़ने से लवणों का निक्षालन ठीक से नहीं होता है तथा लवणों की मात्रा भूसतह पर अधिक हो जाती है। नमी की उपस्थिति में सोडियम कार्बोनेट या सोडियम बाईकार्बोनेट विच्छेदित होकर सोडियम तथा हाईड्राक्सिल आयन अलग–अलग हो जाते हैं। परिणामस्वरूप मृदा पीएच मान 8.5 से अधिक होने पर कैल्शियम अवक्षेपित होकर कैल्शियम कार्बोनेट (कंकड़) के रूप में मृदा में जमा होने लगता है। कुछ वर्षों बाद मृदा सोडियम विनिमय प्रतिशत बढ़ने के कारण भौतिक संरचना प्रतिकूल हो जाती है तथा मृदा में हवा पानी का संचार बाधित होने लगता है।

मृदा में क्षारीयता का प्रभाव 50–60 सेंमी. गहराई तक रहता है। इसके नीचे मृदा का पीएच मान सामान्य (7.5 से 8.5) रहता है क्योंकि नीचे की मिट्टी वर्ष में 8–10 माह जल से संतृप्त रहती है। परिणामस्वरूप क्षारीय लवणों की सान्द्रता कम होने से पीएच मान 8.5 से अधिक नहीं बढ़ पाता है।

मृदा क्षारीय होने से घास/चारा फसलें उगाना सम्भव नहीं हो पाता है। पशुओं को चारे की समस्या बनी रहती है। जल रिसाव का प्रभाव गाँव के मकानों पर भी पड़ रहा है। कच्चे या पक्के मकानों की नींव लवणता तथा अधिक नमी होने से कमजोर हो जाती है। घरों में हमेशा नमी बने रहने के कारण स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ठीक नहीं रहता है। परंपरागत वृक्ष सूख जाने, जलभराव तथा मृदा की क्षारीयता से गाँव वालों की आर्थिक स्थिति प्रभावित हो रही है।

इन क्षेत्रों में धान, गेहूँ तथा अन्य फसलों की उपज बहुत ही कम (1.0 टन/हैक्टर/वर्ष) होती है। रबी की अन्य फसलें अधिक क्षारीयता के कारण नहीं हो पाती है।

जलमग्न क्षारीय भूमि को उपजाऊ बनाने का प्रयास

प्रभावित क्षेत्र की समस्याओं के निराकरण हेतु किसानों के खेत की मिट्टी एवं पानी के नमूनों का विश्लेषण किया गया। मृदा जाँच से पता चला कि भूमि की उपरी सतह का पीएच मान 10.30 था तथा सतह से नीचे 60 सेंमी. तक पीएच मान 9.02 पाया गया। मृदा की वैद्युत चालकता 0.5 डेसी सीमन्स/मीटर से कम थी। भूजल स्तर 70–80 सेंमी. अक्टूबर से मार्च तक रहता था। बरसात के महीनों (जुलाई–सितम्बर) में पूरे खेत में पानी भरा रहता था। मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा 0.2 प्रतिशत से कम तथा सोडियम विनिमय क्षमता 70–80 प्रतिशत के बीच थी। 60 सेंमी. से नीचे मृदा का पीएच मान 8.9 से कम था। चयनित खेत में पिछले 20 वर्षों से कोई भी फसल नहीं हो रही थी जबकि इसके पहले इस खेत में धान, गेहूँ, चना, सरसों इत्यादि मुख्य फसलें उगाई जाती थी। मुख्य नहर से चयनित खेत की दूरी करीब 200 मीटर है। भूमि के भौतिक, रासायनिक गुणों एवं भूजल स्तर, जल के गुणों तथा पूर्व में किये गये प्रयोगों के आधार पर प्रभावित भूमि में तालाब आधारित फसल प्रणाली मॉडल विकसित करने का निर्णय किया गया।

समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल के मुख्य उद्देश्य

उच्च भूजल स्तर तथा लवणों को पौधों के जड क्षेत्र से बाहर करके इनके प्रभाव को कम करना तथा रिसाव जल के उपयोग द्वारा प्रति हैक्टर अधिक उत्पादन लेना इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था।

उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसानों की सक्रिय भागीदारी से समन्वित कृषि प्रणाली का मॉडल तैयार करने की रूपरेखा तैयार की गयी। जिसमें निम्नलिखित पहलुओं का ध्यान रखा गया।

- रिसाव जल को संरक्षित करके मछली पालन हेतु तालाब का निर्माण, जिसमें बाहर से पानी की कम से कम आवश्यकता हो।
- फसलोत्पादन हेतु भूजल से करीब 2.5 मीटर ऊँचा बेड बनाना ताकि कैपिलरी द्वारा मृदा सतह पर लवण कम मात्रा में एकत्रित हो सकें।
- बेड की चौड़ाई 25 मीटर से अधिक तथा 5 मीटर से कम नहीं होनी चाहिए। बेड की चौड़ाई अधिक होने पर लवणों के बेड पर एकत्रित होने की संभावना रहती है तथा चौड़ाई कम होने पर खेत की जुताई में बाधा आती है।
- तालाब तथा बेड के क्षेत्रफल का अनुपात इस प्रकार होना चाहिए कि बेड की ऊँचाई के लिए समुचित मिट्टी मिल सके।
- मॉडल आर्थिक दृष्टिकोण से लाभदायक तथा टिकाऊ हो जिसको छोटे किसान (एक एकड़) भी अपना सकें।

समन्वित कृषि प्रणाली के अवयव एवं तैयार करने की विधि

किसान की आवश्यकता एवं भूपरिस्थितिकी अनुसार मछली पालन, धान–गेहूँ, सब्जी एवं चारा उगाने हेतु मॉडल को 1:1 अनुपात (एक भाग तालाब तथा 1 भाग बेड) में विकसित किया गया। मॉडल का आकार अंग्रेजी अक्षर के यू आकार का दिया गया। तालाब की गहराई 2.0 मीटर की गयी। चयनित खेत में करीब 2850 वर्गमीटर में तालाब तथा 2900 वर्गमीटर में बेड का निर्माण किया गया। बेड की चौड़ाई 10 से 25 मीटर के बीच रखी गयी। अधिक चौड़ाई होने पर लवणों के एकत्रित होने से फसल उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

तालाब की खुदाई से निकली मिट्टी को तालाब के चारों तरफ फैला दिया गया। मिट्टी फैलाते समय खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी जिसका पीएच मान अधिक था उसे बेड के नीचे तथा अच्छी मिट्टी को बेड की ऊपरी सतह पर डाला गया। बेड की भूजल से ऊँचाई 2.5 मीटर से अधिक रखी गयी। दो मीटर से कम ऊँचाई होने से पौधों पर लवणों का प्रभाव आने लगता है तथा धीरे–धीरे मृदा के ऊसर में परिवर्तित होने की संभावना रहती है। मिट्टी के क्षरण को कम करने हेतु बेड का ढलान 45–60 प्रतिशत रखा गया तथा ढलान पर हाईब्रीड नेपियर घास (को–4) लगायी गयी। बेड का समतलीकरण करने के बाद चारों तरफ 50 सेंमी. चौड़ी तथा 30 सेंमी. ऊँची मेड़ बनायी गयी जिससे पानी को बेड पर रोककर निक्षालन किया जा सके। अधिक वर्षा होने की स्थिति में मेड़ के कटाव को रोकने हेतु 8 से 10 फीट लम्बाई व 10 सेंमी. व्यास का प्लास्टिक पाईप बेड के चारों तरफ 20 मीटर की दूरी पर लगाया गया। वर्षा के दौरान पाईप के द्वारा पानी बेड से निकलकर तालाब में चला जाता है। बेड पर लवण इकट्ठा होने पर खेत में पानी भरकर पाईप द्वारा निक्षालन किया गया। वर्ष में दो से तीन बार निक्षालन करने से लवण जड़ीय क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं। इस प्रकार तैयार किये गये बेड की मृदा में जिप्सम डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यदि मृदा का पीएच मान 9 से ऊपर हो तो जिप्सम की मात्रा 5 टन प्रति हैक्टर धान की रोपाई के 1 से 2 माह पहले डालना अधिक लाभकारी होता है।

फसल चक्र

बेड को तैयार करने के बाद ढैंचा की फसल हरी खाद हेतु उगाई गयी। उसके बाद धान एवं गेहूँ लगाया गया। दूसरे वर्ष से किसानों की आवश्यकता एवं अधिक लाभ लेने हेतु धान–गेहूँ–मूँग, सब्जियाँ, सरसों–सब्जियाँ फसल चक्रों को अपनाया गया। धान और गेहूँ की औसत उपज 4.8 एवं 4.5 टन/हैक्टर थी। मूँग की उपज भी 1 टन/हैक्टर पाई गयी। सरसों और सब्जियों (टमाटर, पालक, बैंगन) फसल चक्र में सरसों की उपज 2 टन/हैक्टर तथा सब्जियों से प्रत्येक दिन आमदनी प्राप्त होती रही। सभी मौसम की सब्जियों के फसल चक्र से किसान को अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ।

इन क्षेत्रों में पशुओं हेतु चारे की कमी रहती है। बेड के ढलानों पर तथा करीब 400 वर्गमीटर में बहुवर्षीय चारा संकर नेपियर घास जून–जुलाई में लगाई गई। इस प्रजाति द्वारा किसान को प्रतिदिन 60–70 किलोग्राम हरा चारा जुलाई से नवम्बर तक तथा फरवरी से मार्च माह में मिला। अधिक ठंड तथा गर्मी में बढ़वार कम होने से दिसम्बर से जनवरी तथा अप्रैल से जून माह में चारे की उपलब्धता कम हुई। वर्ष भर हरे चारे की उपलब्धता से 2 दुधारू पशुओं का दूध 2–3 लीटर प्रतिदिन अधिक प्राप्त हुआ। विगत कुछ वर्षों से किसान मुख्य रूप से मैथी, सब्जियाँ, चारा एवं मछली का उत्पादन करके अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है।

मछली पालन

मॉडल मुख्य नहर के किनारे होने के कारण तालाब में रिसाव का पानी आता रहता है तथा नहर में पानी नहीं होने पर तालाब का पानी कम होने लगता है। वर्ष में जुलाई से अप्रैल माह तक तालाब में पानी का

स्तर 0.6 मीटर से 2 मीटर तक बना रहता है। गर्मी में विशेषकर मई एवं जून में नहर बन्द रहती है तथा वाष्पीकरण अधिक होने से पानी का स्तर बहुत कम (0.2 मीटर) के करीब रह जाता है। ऐसी स्थिति में नलकूप से पानी भरकर कम से कम दो फीट तक रखना मछली पालन हेतु आवश्यक होता है।

तालाब में रोहू, कतला एवं मृगल की बराबर मात्रा में कुल 4000 फिंगर लिंग जून–जुलाई माह में डाली गयी। तालाब नया होने के साथ इसकी मृदा क्षारीय होने के कारण फाईटो प्लैंक्टान की मात्रा नगण्य थी। बाद के वर्षों में फाईटो प्लैंक्टान की बढ़वार अच्छी रही। इसकी मात्रा बढ़ाने हेतु तालाब में प्रतिदिन 30 किलोग्राम ताजा गोबर डाला गया। मछलियों के आहार हेतु धान का ब्रान एवं सरसों खली 2:1 के अनुपात में मिलाकर मछली के भार अनुसार (भार का 1 प्रतिशत) खिलाया गया। मछली का औसत उत्पादन एक साल में 18–20 कुण्टल पाया गया।

किसान सहभागिता

मॉडल का विकास किसान की भागीदारी के आधार पर ही तैयार किया गया। प्रारम्भ में ही निर्धारित किया गया कि कृषि कार्य, मछली पालन से संबंधित कार्यों को किसान द्वारा किया जायेगा। किसानों के पूरे परिवार ने इस मॉडल को लाभकारी बनाने में सहयोग दिया। वैसे तो किसान केवल धान एवं गेहूँ की खेती से अवगत था। लेकिन मॉडल में अन्य अवयवों जैसे सब्जी, मछली पालन तथा बहुवर्षीय चारा घास उगाने की तकनीक से अवगत नहीं था। वैज्ञानिक ने लाभार्थी श्री घसीटा, श्री दिनेश एवं इनके परिजनों को आधुनिक खेती के विभिन्न तकनीकों का प्रशिक्षण दिया। धीरे–धीरे परिवार की सक्रियता बढ़ने लगी तथा मछली पालन, सब्जियों का उत्पादन, रख–रखाव, चारा काटकर जानवरों को खिलाना तथा फसल अवशेष के द्वारा वर्मी कम्पोस्ट बनाना परिवार की औरतों का मुख्य कार्य हो गया। मॉडल का लाभ देखते हुए गाँव के अन्य परिवारों की औरतें–पुरूष भी नई तकनीकों से अवगत होकर लाभ ले रहे हैं।

आर्थिक लाभ

मॉडल (0.6 हैक्टर) को तैयार करने में कुल 1.85 लाख का खर्च आया। धान, गेहूँ, मूँग, सब्जियाँ, चारा फसलें एवं मछली उत्पादन से किसान को प्रत्येक वर्ष औसतन रुपये 2.50 लाख से अधिक प्राप्त हुआ तथा शुद्ध लाभ औसतन 1.5 लाख से अधिक प्राप्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त मछली, सब्जियाँ, दूध तथा अन्न के द्वारा किसान के बच्चों, महिलाओं एवं पुरूषों को संतुलित आहार मिल रहा है। किसानों के परिवार को आर्थिक लाभ एवं संतुलित आहार मिलने से उसके सामाजिक स्तर में सुधार हुआ है। जो परिवार के सदस्य मजदूरी के लिए शहरों की तरफ जाते थे, वे मछली पालन, पशुपालन, सब्जियों की खेती आदि में लगे हुए है। पूरा परिवार परियोजना के माध्यम से गाँव में ही रहकर अपने सुनहरे सपनों को साकार करने में लगा हुआ है। अतः इस प्रकार के मॉडल का नहरी क्षेत्रों में निर्माण करके किसान अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं तथा जल रिसाव के प्रतिकूल प्रभाव से भी बचने में मदद मिल सकती है।

परियोजना की स्वीकार्यता

यह कार्यक्रम अति पिछड़े एवं समस्याग्रस्त क्षेत्र में चलाया गया। किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। परियोजना की लागत अधिक होने तथा विभिन्न प्रकार के अविश्वास होने के कारण प्रारंभिक संचालन में कठिनाई आई लेकिन परियोजना से प्राप्त शुद्ध आय ने लाभार्थी तथा गैर लाभार्थी को आकर्षित किया है। अब धीरे–धीरे दूसरे किसान भी इस मॉडल को अपनाने हेतु आगे आने लगे हैं। यदि भविष्य में सरकार द्वारा इस परियोजना के लिए सहयोग मिला तो निश्चय ही नहरी क्षेत्रों में उच्च भूजल प्रभावित क्षारीय मृदा का परती/बंजर भूमि क्षेत्र सब्जी एवं मछली उत्पादन का प्रमुख केन्द्र बनकर किसानों की आय को दोगुनी एवं ग्रामस्तर पर रोजगार का अवसर प्रदान करने में सहायक होगा।

समाप्त

राजकुमार, अंशुमान सिंह एवं आर॰के॰ यादव
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: rajhorticulture@gmail.com

लवणीय क्षेत्रों के लिए अनार-एक संभावित फसल

लवण प्रभावित मृदाओं में घुलनशील लवणों का संचय होने के कारण पोषक तत्वों का असंतुलन, विशिष्ट तत्वों का पौधों पर नकारात्मक प्रभाव, मिट्टी की आसरण–प्रवण क्षमता का कम होना या इन कारकों के संयोजन से पौधों के विकास पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। लवण तनाव के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण, प्रोटीन संश्लेषण, ऊर्जा और लिपिड मेटाबोलिज्म जैसी विभिन्न विकास प्रक्रियाएं प्रभावित होती हैं। ये अतिरिक्त लवण पौधों में पानी की गति में परिवर्तन करके, विशिष्ट आयन विषाक्तता या असंतुलन के कारण कई फल फसलों में वृद्धि, उर्जा और उपज आदि को कम करते हैं। फसल में होने वाला नुकसान फसल की प्रजाति, किस्म और लवणता की समस्या के स्तर पर निर्भर करता है। आमतौर पर पौधे उगते समय और आरंभिक अवस्था में लवणों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

भारत के कई शुष्क तथा अर्धशुष्क जलवायु क्षेत्रों में कृषि योग्य मृदाएं कम वर्षा, कम आर्द्रता, उच्च तापमान, उच्च वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन के कारण लवणीय या क्षारीय हो चुकी है, जिसके कारण कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है। देश की बढ़ती जनसंख्या की जरुरतों को पूरा करने के लिए लवणीय व क्षारीय भूमियों को सुधारकर खेती योग्य बनाने की नितांत आवश्यकता है। अगर इन समस्याग्रस्त भूमियों का इस्तेमाल फसलोत्पादन के लिए किया जाता है तो एक ओर अतिरिक्त खाद्य पदार्थों की मांग पूरी करने में मददगार साबित होगा और, वहीं दूसरी तरफ लवण प्रभावित भूमियों के सुधार से प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि व जल का संरक्षण व बेहतर पर्यावरण का सृजन भी संभव होगा। लवणीय व क्षारीय भूमियां भारत के लगभग सभी राज्यों में फैली हुई है। इन मृदाओं में फसल उत्पादन न के बराबर होता है। हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 329 मिलियन हैक्टर है, जिसमें से लगभग 143 मिलियन हैक्टर पर खेती की जाती है जबकि लगभग 117 मिलियन हैक्टर परती एवं बंजर भूमि है। देश के विभिन्न भागों में 6.73 मिलियन हैक्टर भूमि लवण प्रभावित है, जिसमें से लगभग 56 प्रतिशत क्षारीय व शेष लवणीय है। अभी तक लगभग 2 मिलियन हैक्टर ऊसर भूमि का ही सुधार किया जा सका है। उन्नत तकनीकों के प्रयोग द्वारा लवण प्रभावित मृदाओं में बागवानी फसलों की खेती एक बेहतर विकल्प साबित हो सकती है।

आज के युग में बढ़ती आबादी का दबाव और अच्छी गुणवत्ता वाली भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा की वजह से उत्पादन क्षेत्र लगातार सिकुड़ता जा रहा है। अतः सीमांत और लवण प्रभावित मृदाओं को उन्नत विधियों के प्रयोग द्वारा कृषि उपयोग में लाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं दिखाई दे रहा है। लवण प्रभावित मृदाओं में बागवानी फसलों की खेती से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार की उम्मीद की जा सकती है। कई फलों जैसे अनार, जामुन, खजूर, आवंला, चीकू, जैतून, अंजीर, अमरूद आदि में अधिक उत्पादन देने वाली लवण सहिष्णु किस्मों की पहचान की गई है।

हरियाणा राज्य में धान–गेहूँ फसल प्रणाली की स्थिरता भारत की खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। लेकिन, पिछले कुछ दशकों से कई चुनौतियों जैसे पैदावार में स्थिरता, घटती उत्पादकता, तेजी से गिरता

भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन, मृदाओं का बिगड़ता स्वरुप और पर्यावरण प्रदूषण का बढ़ना, इस फसल प्रणाली की निरंतर प्रासंगिकता के समक्ष गंभीर खतरों के रूप में उत्पन्न हुए हैं। हरियाणा राज्य में लवण प्रभावित मृदाओं के अलावा लवणीय/क्षारीय भूजल की समस्या भी धीरे–धीरे बढ़ी है। अतः पर्यावरण–अनुकूल संसाधन संरक्षण उत्पादन रणनीतियों और तकनीकों को अपनाते हुए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं बेहतर उपयोग के लिए बागवानी फसलें उगाकर धान–गेहूँ फसल प्रणाली से उत्पन्न समस्याओं पर बहुत हद तक नियंत्रण संभव है। अनार एक लवण सहिष्णु पौधा है। यह दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में स्वादिष्ट और पोषक फलों के लिए उगाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि अनार की उत्पत्ति का स्थान ईरान है। अनार के पौधे मौसम के अनुसार पत्तियाँ गिरा देते हैं। पौधे की औसतन ऊँचाई 5 से 8 मीटर तक होती है। अनार में, उत्तरी गोलार्ध में सितंबर से फरवरी और दक्षिणी गोलार्ध में मार्च से मई के बीच में फल लगते हैं। इसके फलों के अन्दर छोटे–छोटे चमकीले दाने होते हैं जोकि हल्के गुलाबी रंग से लेकर गहरे लाल रंग के होते हैं। हर दाने के बीच में एक बीज पाया जाता है जोकि चारों ओर से रस से भरा होता है। अनार के फलों को सीधा भी खाया जा सकता है और इनका जूस निकाल कर भी पीया जाता है।

भारत में अनार जम्मू–कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक पाया जाता है, लेकिन अनार का व्यवसायिक स्तर पर उत्पादन केवल महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और कर्नाटक राज्यों तक ही सीमित है। इसकी सुखा सहनशीलता विशेषता के कारण शुष्क, वर्षा आधारित, चारागाह और बंजर भूमि आदि क्षेत्रों के लिए, जहाँ पर अन्य फसलों को सफलतापूर्वक उगाया जाना नामुमकिन होता है, एक उपयुक्त फसल माना जाता है। शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में अनार उगाकर कम लागत से ज्यादा उपज और प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक आय की प्रबल संभावना है। हालाँकि लवण प्रभावित मिट्टी और सिंचाई जल वर्तमान में बागवानी फसलों की खेती के लिए सबसे गंभीर समस्या है। इसीलिए वर्तमान में, अनार की अधिकांश खेती दुनिया के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में की जाती है, जहाँ मिट्टी की लवणता और जल तनाव आदि उपयुक्त उपज उत्पादन की मुख्य रुकावटें हैं।

विश्व में लगभग 800 मिलियन हैक्टर से अधिक भूमि लवणता से प्रभावित है जो कुल भूमि के लगभग 6 प्रतिशत के बराबर है। अतः इन लवण प्रभावित मृदाओं में अनार की खेती को बढ़ावा देने की अच्छी संभावना है। अजैविक तनाव सहिष्णुता, उच्च उपज और कम लागत की वजह से विपरीत परिस्थितियों में खेती के लिए अनार एक अच्छी फसल के रूप में उभरी है। अनार की खेती उन क्षेत्रों में विकल्प हो सकती है, जहाँ अन्य फल फसलें तनाव और जलवायु की स्थिति के कारण बेहतर प्रदर्शन करने में सक्षम नहीं है। इस प्रकार, भारत के लवणग्रस्त क्षेत्रों में किसानों द्वारा खेती के लिए अनार की खेती का विस्तार किया जा सकता है।

अनार की किस्में

व्यवसायिक स्तर पर उगाए जाने वाले अनार की किस्मों की विविध विशेषताओं को तालिका 1 में दिखाया गया है।

अनार का बाजार में आगमन और उपलब्धता

अनार लगभग साल भर मंडी में उपलब्ध होता है। इस फसल को बहार उपचार अपनाकर उगाया जा सकता है जिससे मांग के अनुसार ही फसल को तैयार किया जा सकता है।

तालिका 1. मुख्य रूप से उगाई जाने वाली अनार की विकसित किस्मों का विवरण

किस्म	लक्षण
गणेश	इस किस्म में हल्के पीले से पीले लाल रंग का छिलका होता है और बीज मुलायम होते हैं। फल का वजन 225–250 ग्राम के बीच होता है।
रूबी	इस किस्म में फलों के छिलके का रंग लाल होता है और वजन 225–275 ग्राम के बीच होता है। बीज नरम होते हैं, कुल घुलनशील ठोस उच्च होता है।
फुले अरक्ता	इस किस्म में फल नरम बीजों के साथ गहरे लाल रंग के होते हैं और कुल घुलनशील ठोस उच्च होता है।
भगवा	इस किस्म में फल चमकदार लाल होता है। बीज नरम और कुल घुलनशील ठोस उच्च पाया जाता है।

तालिका 2. बहार उपचार के अनुसार अनार के आगमन का विवरण

बहार	फूल आने का समय	फल तुड़ाई की अवधि
मृग बहार	जून–अगस्त	नवंबर–मार्च
हस्ता बहार	अक्टूबर–नवंबर	फरवरी–मई
अम्बे बहार	जनवरी–फरवरी	जून–अगस्त

अनार में मापदंड और ग्रेड का विवरण

एगमार्क मानक के अनुसार फल के आकार को मध्य रेखा से अधिकतम व्यास या वजन द्वारा निर्धारित किया जाता है। अनार के फलों का आकार और वजन के आधार पर निम्नलिखित तालिका 3 में वर्गीकरण दिखाया गया है।

तालिका 3. अनार के फलों का वजन और आकार के मापदंडों पर आधारित वर्गीकरण

आकार कोड	वजन ग्राम (न्यूनतम)	व्यास मिमी (न्यूनतम)
ए	400	90
बी	350	80
सी	300	70
डी	250	60
ई	200	50

अनार की खेती में ध्यान देने योग्य आवश्यक बातें:

- बीमारी रहित बेहतर किस्मों और गुणवत्ता वाली पौध का उपयोग करना।
- उच्च घनत्व रोपण को अपनाना।
- उचित कैनोपी प्रबंधन।

- एकीकृत पोषक तत्व और जल प्रबंधन।
- पेड़ पर फल का उचित भार रखना।
- एकीकृत हानिकारक कीट प्रबंधन प्रथाओं द्वारा कीटों और बीमारियों का समय पर नियंत्रण करना।

भारत से अनार का निर्यात करने की क्षमता

अनार का निर्यात करने का सामर्थ्य निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा दर्शाया गया है:

- भारत दुनिया में अनार का सबसे बड़ा उत्पादक देश है।
- भारत में उगाई जाने वाली अनार के नरम बीज वाली बेहतरीन रंग के फलों वाली किस्में जिनमें अम्ल बहुत कम और दानों का रंग भी आकर्षक होता है।
- विभिन्न ''बहार'' को अपनाने के साथ, भारत लगभग पूरे वर्ष अनार की आपूर्ति कर सकता है।
- महाराष्ट्र और उत्तरी पश्चिमी कर्नाटक राज्यों में अनार की अधिकतम खेती की जाती है जोकि खाड़ी और यूरोपीय देशों को निर्यात करने के लिए मुंबई के पश्चिमी बंदरगाह के बहुत करीब है।
- खाद्य गुणवत्ता और आकर्षण में अनार की गुणवत्ता स्पेन और ईरान से काफी बेहतर है।
- महाराष्ट्र राज्य में अनार के निर्यात को बढ़ाने के लिए कृषि निर्यात क्षेत्र की स्थापना की गई है।
- राष्ट्रीय अनार अनुसंधान केंद्र, सोलापुर में अनार की वैज्ञानिक खेती के लिए अनुसंधान संस्थान बनाया गया है।
- अनार से संबंधित शोध हेतु महाराष्ट्र में राष्ट्रीय अनार अनुसंधान केन्द्र, सोलापुर व महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुडी और कर्नाटक में भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर है।
- महाराष्ट्र राज्य की अनार सहकारी समितियों द्वारा एक शीर्ष सहकारी समिति "महाअनार" का भी गठन किया गया है।
- भगवा किस्म को यूरोपीय बाजार में उच्च ख्याति प्राप्त है।
- अनार का निर्यात सुविधा केंद्र बारामती क्षेत्र में स्थापित किया जा रहा है।
- किसानों को निर्यात हेतु गुणवत्ता उत्पादन के लिए प्रमाणीत ग्लोबलगैप पंजीकृत प्रशिक्षण केन्द्रों पर प्रशिक्षित किया जाता है।
- भारतीय अनार के प्रमुख बाजार संयुक्त अरब अमीरात, बांग्लादेश, नीदरलैंड, ब्रिटेन, सऊदी अरब और रूस आदि है।

अनार के रोग एवं कीट नियंत्रण

अनार के पौधों व फलों के प्रमुख रोग, लक्षण एवं उनके नियंत्रण के उपाय तालिका 4 में दिए गए हैं:

तालिका 4. अनार के पौधों व फलों के प्रमुख रोग, लक्षण एवं नियंत्रण

रोग	लक्षण	रोकथाम
पत्ती व फल धब्बा रोग	इस रोग का प्रकोप अधिकतर मृग बहार की फसल में होता है। वर्षा ऋतु में अधिक नमी के कारण पत्तियों और फलों के ऊपर फफूंद के भूरे धब्बे दिखाई देते हैं, जिससे फलों के बाजार मूल्य में गिरावट आ जाती है।	मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) या जाइनेब (0.2 प्रतिशत) फफूंदनाशी दवा का 15–20 दिन के अन्तराल पर तीन–चार बार छिड़काव धब्बे दिखाई देते ही करना चाहिए।
दीमक	पौधों की जड़ों एवं तनों में दीमक का अत्यधिक प्रकोप होता है जिससे पौधे सूख जाते हैं। अनार की पौध स्थापना में दीमक का प्रकोप एक गंभीर समस्या है।	पौधा रोपण के समय ही प्रत्येक गड्ढे के भरावन मिश्रण में 50 ग्राम मिथाइल पैराथियान चूर्ण (5 प्रतिशत) मिलाना चाहिए। प्रत्येक सिंचाई के समय क्लोरपाइरीफॉस (डरमिट) कीटनाशक दवा की 5–10 बूंद थालों में देते रहना चाहिए।
अनार की तितली	यह अनार के फलों का सबसे हानिकारक कीट है। प्रौढ़ तितली द्वारा दिये गये अंडों से निकली सूण्डियां फलों को छेदकर अन्दर प्रवेश कर फल के गूदे को खाती रहती है।	इसके नियंत्रण के लिए वर्षा ऋतु में फल वृद्धि के समय 0.2 प्रतिशत डेल्टामेथ्रीन या 0.03 प्रतिशत फॉस्फोमिडान कीटनाशक दवा के घोल का 15–20 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।
तनाबेधक	वयस्क कीट नई कोपलें, पत्तियां और टहनियां खाते हैं, जबकि गिडार तने में सुराख बनाकर अन्तःऊतक को नष्ट कर देती है, जिससे तना कमजोर हो जाता है तथा पौधे सूखने लगते हैं।	तनाबेधक कीट से बचाव के लिए 0.3 प्रतिशत डायक्लोरवास घोल में भीगी रुई को कीट के प्रवेश द्वार में ठूंसकर गीली मिट्टी का लेप कर देते हैं।
माइट	माइट अत्यन्त ही सूक्ष्म जीव है जो प्रायः सफेद एवं लाल रंग के होते हैं। ये अनार की पत्तियों के ऊपरी एवं निचली सतह पर शिराओं के पास चिपक कर रस चूसते रहते हैं। माइट ग्रसित पत्तियां	माइट का प्रकोप होते ही पौधों पर एक्साइड दवा के 0.1 प्रतिशत घोल के दो छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए ।

	ऊपर की तरफ मुड़ जाती हैं और पूर्ण ग्रसित होने की दशा में पौधा पत्ती रहित होकर सूख जाता है ।	
सूत्रकृमि	सूत्रकृमि या निमैटोड अत्यन्त ही सूक्ष्म, धागेनुमा या गोल जीव होते हैं जो अनार की जड़ों में गांठे बना देती है। पौधों की पत्तियां पीली पड़कर मुड़ने लगती है। पौधों का विकास बाधित हो जाता है तथा उपज प्रभावित होती है।	सूत्रकृमि ग्रसित पौधों की जड़ों को छेद कर उसमें 50 ग्राम फोरेट 10 जी डालकर अच्छी तरह मिट्टी में मिलाकर सिंचाई करना लाभदायक होता है।
मीलीबग, मोयला, थ्रिप्स आदि	यह कीट भी अनार के पौधों के कोमल भागों का रस चूसते हैं जिससे कलियां, फूल व छोटे फल प्रारंभिक अवस्था में ही खराब होकर गिरने लगते हैं।	इनकी रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस या डायमेथोएट कीटनाशी का 0.05 प्रतिशत (5 मिली. प्रति लीटर पानी) घोल का छिड़काव करना चाहिए।

समाप्त

कठिन समय में कायर बहाना ढूंढ़ते हैं,
वहीं जो बहादूर होते हैं वे रास्ता खोजते हैं।

सतीश कुमार सनवाल, गुरप्रीत कौर, अनिता मान एवं अश्वनी कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: satishsanwal@rediffmail.com

लवणग्रस्त मृदाओं में सब्जियों की उन्नत खेती

सब्जी उत्पादन में भारत दुनिया का दूसरा सबसे अग्रणी देश है। वर्तमान में यह 166.5 मिलियन टन (बागवानी सांख्यिकी, 2015) वार्षिक उत्पादन के साथ 9.54 मिलियन हैक्टर क्षेत्र पर है। प्रकृति ने देश को विभिन्न जलवायु और विशिष्ट मौसमों का आर्शीवाद दिया है, जिसकी वजह से सौ से अधिक प्रकार की सब्जियां उगाना संभव है। सब्जी उत्पादन छोटे किसानों के लिए जीवनयापन का प्रमुख साधन है। सब्जियों की खेती लगातार और ज्यादा आय प्रदान करती है। लवणता एवं क्षारीयता कृषि के विकास के लिए एक गंभीर चुनौती बन कर उभरी है। पूरे विश्व में जहाँ लगभग 1000 मिलियन हैक्टर भूमि इन समस्याओं से प्रभावित है, भारतवर्ष में इससे लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर भूमि पर कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। भारत में 3.77 मिलियन हैक्टर भूमि ऊसर (क्षारीय) एवं 2.96 मिलियन हैक्टर भूमि लवणीय होने का अनुमान है। ऐसी भूमियों में गर्मियों के दिनों में ऊपरी सतह पर सफेद परत बन जाती है, जो मुख्यतः सोडियम कार्बोनेट तथा बाईकार्बोनेट लवण होते हैं। इनके कारण भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है। जिससे पूरे क्षेत्र का अनुपात बिगड़ जाता है।

लवणता का सब्जियों पर प्रभाव

मृदा लवणता के विभिन्न स्तरों पर कई सब्जी फसलों के प्रदर्शन का अध्ययन किया गया जिसमें पाया गया कि बीन्स लवणता के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है, उनकी उपज 3 डेसीसीमन्स/मीटर की लवणता पर 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है, जबकि ब्रोकोली, खीरा, सौंफ़ और स्क्वैश अपेक्षाकृत सहनशील है क्योंकि 3 डेसीसीमन्स/मीटर पर उपज में कोई कमी नहीं हुई। पालक, अजवाइन और गोभी बहुत सहनशील है, क्योंकि उपज में 50 प्रतिशत कमी 10 डेसीसीमन्स/मीटर की उच्च लवणता में होती है। अन्य प्रयोग में सौंफ के बीज की पैदावार 4.6 डेसीसीमन्स/मीटर और 8.7 डेसीसीमन्स/मीटर खारे पानी की सिंचाई के साथ क्रमशः 4.7 और 20 प्रतिशत तक कम पाई गई।

लवणता के प्रति सहनशील किस्में

एक फसल की विभिन्न किस्मों की लवण सहनशीलता भिन्न–भिन्न हो सकती है। लवणीय परिस्थितियों में कुछ बेहतर किस्मों को तालिका 2 में सूचीबद्ध किया गया है। अधिकांश फसलें अंकुरण और आरंभिक अवस्था में लवण के प्रति संवेदनशील होती है जबकि बहुत कम फसलें फूल एवं प्रजनन अवस्था में लवण के प्रति संवेदनशील होती है (तालिका 3)। विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया कि लेटुस, टमाटर (एचएस–आई 01), बैंगन, सौंफ और मैथी के बीजों का जमाव मृदा लवणता 4.0 डेसी सीमन्स/मीटर पर 50 प्रतिशत से भी कम रहा जबकि करेला, खरबुजा (हरा मधु) और फूलगोभी में ईसीई 5.0 डेसीसीमन्स/मीटर पर अच्छा बीज जमाव हुआ। सलाद, टमाटर, सौंफ, मैथी और बैंगन ईसीई 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर पर 50 प्रतिशत से कम बीज अंकुरण दिखाते हैं, जबकि ईसीई 5.0 डेसी सीमन्स/मीटर पर खरबूजा, करेला और फूलगोभी के मामले में इसी तरह की कमी देखी गई। तालिका 3

तालिका 1: विभिन्न मृदा लवणता में सब्जियों की पैदावार में प्रतिशत कमी

सब्जियां	पैदावार में कमी व मृदा लवणता स्तर (डेसीसीमन्स/मीटर)			
	कोई नहीं	25 प्रतिशत	50 प्रतिशत	100 प्रतिशत
बीन्स	1	2	3	5
ब्रॉड बीन (बाकला)	2	4	7	12
ब्रोकोली	3	6	9	12
गाजर	1	3	6	8
पत्ता गोभी	2	6	10	16
अजवायन	2	6	10	16
मिर्च	1	4	6	11
खीरा	3	5	7	12
सौंफ	3	6	9	12
लहसुन	2	3	7	10
सलाद	1	3	5	9
खरबूजा	1	4	6	11
प्याज	1	3	5	8
भिंडी	2	4	6	–
पालक	2	5	8	15
मिर्च	2	3	7	10
आलू	2	4	7	11
पालक	2	5	10	16
शकरकंद	2	4	6	10

में दी गई फसल सहिष्णुता पर मौजूद आंकड़ों का इस्तेमाल उन फसलों का आंकलन करने के लिए किया जा सकता है जो जलवायु और मिट्टी की स्थितियों के कारण खारे पानी के साथ उगाई जा सकती है। खारे पानी मे उन्हीं सब्जी फसलों को उगाना चाहिए जो लवणता के प्रति सहिष्णु और अर्ध–सहिष्णु हैं, एवं जिनकी पानी की आवश्यकता भी कम हो।

सब्जियों पर क्षारीयता का प्रभाव

सब्जी फसलों की क्षारीयता सहनशीलता

अधिकांश अनुसंधान संस्थानों में अब तक सामान्य या लवणीय स्थितियों के लिए जीनोटाइप की शिनाख्त करना और प्रजनन द्वारा फसलों की नई किस्में तैयार करने का लक्ष्य रखा गया है, क्षारीय पर्यावरण के लिए सीमित प्रयास किए गए हैं। लवणता की तरह क्षारीयता सहिष्णुता के संबंध में भी फसलों की व्यापक अनुवांशिक भिन्नता और उनकी किस्में मौजूद है। फसल पैदावार आम तौर पर काफी कम नहीं होती है जब तक मिट्टी में नमक एकाग्रता और ईएसपी प्रत्येक फसल के लिए विशिष्ट मान से अधिक न हो जाए। सर्दियों की फसलों की नमक और सोडियम सहिष्णुता गर्मियों के दौरान उगाई जाने वाली फसलों की तुलना में आम तौर पर अधिक होती है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि कम वर्षा वाले इलाकों में

तालिका 2. विभिन्न सब्जियों की लवण सहनशील किस्में

फ़सल	किस्में
टमाटर	हाइब्रिड 14, मारग्लोबे, कल्याणपुर, टी–9, साबौर सुफला, हिसार अरुण, ईसी–2791, डीटी–10, ईसी–13904, सी–11–2
बैंगन	ब्लैक ब्यूटी, आर–34
पत्ता गोभी	गोल्डर एकर
मिर्च	सी–4, मुसलवादी
लहसुन	एच जी–6
खरीफ प्याज	बसंत
खरबूजा	पूसा मधुरस
प्याज	हिसार–2, पंजाब सलेक्शन, उदयपुर–102, बॉम्बे रेड, पूसा रतनार
भिंडी	पूसा सावनी
मटर	पी–23, नई लाइन परफेक्शन, मार्केट प्राइज
आलू	जेइ–808, कुफरी चमत्कार, सीपी–2059, जेइ–303, कुफरी सिंधुरी

(400 मिमी से कम) सब्जियों की फसलों को सर्दियों के मौसम के दौरान उगाया जा सकता है और गर्मियों के दौरान कृषि फसल के लिए ज़मीन का उपयोग किया जाये। कुशल रणनीति का उद्देश्य यह होना चाहिए कि रबी के लिए कम पानी की आवश्यकता वाली फसल का चयन और खरीफ के लिए बारिश के पानी पर फलने वाली फसल का चयन करना चाहिए।

विभिन्न अध्ययनों के परिणामों के संकलन से पता चला है कि बैंगन, पालक और चुकंदर सबसे अधिक क्षारीयता सहिष्णु फसलें हैं जबकि अन्य अर्द्धसहिष्णु या संवेदनशील हैं (तालिका 5)। सब्जियों की फसलों को विकसित करने के लिए क्षारीय पानी का उपयोग होने पर इन आंकडों का उपयोग फसलों और फसल की किस्मों की पहचान के लिए किया जा सकता है।

क्षारीयता के लिए विविध प्रतिक्रिया

फूलगोभी, गोभी, प्याज और लहसुन फसलों का क्षारीयता के तहत परीक्षण किया गया जिसमें 11.5 ईएसपी की तुलना में 39.0 ईएसपी पर प्याज, लहसुन, गोभी, और फूलगोभी की पैदावार में क्रमशः 75, 70, 19 और 31 प्रतिशत की कमी आई। फसलों के अलावा उनकी किस्मों की क्षारीयता के प्रति सहिष्णुता भिन्न–भिन्न होती है। आमतौर पर किस्मों और उनकी संभावित उपज की सहिष्णुता के बीच एक नकारात्मक सहसंबंध है। इसलिए ऐसी बहुत किस्में नहीं है जो क्षारीयता के प्रति सहिष्णुता के साथ–साथ अधिक उपज भी देती हो, जो अधिकांश किसानों के लिए चिंता का प्रमुख कारण है। क्षारीयता की स्थिति के तहत कुछ चुनिंदा बेहतर प्रदर्शन करने वाली फसलों की किस्में तालिका 6 में सूचीबद्ध है।

लवणता के प्रभाव से बचाव के उपाय

सब्जी फसलों में लवण सहनशीलता को बढाने के लिए विभिन्न तरीकों को अपनाने के अलावा, लवण के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए विभिन्न कृषि तकनीकों का चयन करना महत्वपूर्ण है।

दोहरी पंक्ति ढलान क्यारी बुवाईः यह प्रणाली भिंडी, टमाटर, जड़ वाली फसलों, आलू और बेल वाली सब्जियों के लिए लागू है। इस विधि में मेड पूर्व–पश्चिम दिशा में बनाई जाती हैं, ताकि मेडों का कोई भी

तालिका 3. विभिन्न लवणता स्तरों पर सब्जियों का प्रदर्शन (प्रतिशत)

फसल (क़िस्म)	पैरामीटर	वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर)				
		2	4	6	8	10
करेला (एचके –8)	अंकुरण	76	60	23	20	0
लौकी (पीएसपी) लंबा	अंकुरण	80	75	60	43	–
बैंगन (पीएच –4)	बीज उपज	85	35	22	–	–
फूलगोभी (हिसार–1)	बीज उपज	81	80	44	35	35
पत्तागोभी (गोल्डन आर्क)	उपज	100	90	77	65	46
गाजर (पुसा केसर)	बीज उपज	95	88	88	77	71
	1000–बीज वजन	96	91	57	47	46
मिर्च (एनपी 46–ए)	फल/पौधे की संख्या	80	74	55	–	–
	उपज/पौधे	86	81	61	0	–
धनिया (नारनौल अंकुरण चयन)	अंकुरण	67	38	15	0	0
	उपज	76	39	31	–	–
सौंफ़ (चयन)	अंकुरण	50	40	20	–	16
	उपज	76	50	30	20	10
लहसुन (एचजी –6)	उपज/पौधे	90	85	75	50	–
कस्तुरी मेथी	बीज उपज	92	30	0	0	0
खरीफ प्याज (एन –53)	पौध संख्या	94	75	58	30	11
	बल्ब उपज/पौधे	84	68	50	24	16
लेटुस	बीज उपज	81	80	44	35	–
खरबूजा (दुर्गापुरा मधु)	अंकुरण	100	100	–	43	17
	उपज/पौधे	–	–	55	50	–
खरबूजा (हरा मधु)	अंकुरण	60	50	13	–	–
मैथी (देसी)	बीज उपज	66	48	37	–	–
भिंडी (पुसा सावनी)	फल/पौधे की संख्या	72	63	56	54	–
	उपज/पौधे	100	65	47	27	–
लहसुन (एचजी –6)	अंकुरण	90	85	75	50	–
पालक (एस –23)	बीज उपज	89	80	68	39	18
टिंडा (हिसार चयन)	अंकुरण	80	66	40	16	13
तोरई	अंकुरण	83	78	68	30	12
टमाटर (एचएस–आई 01)	अंकुरण	70	40	–	–	–
	उपज	75	50	10	–	–
तरबूज	अंकुरण	76	63	23	16	

तालिका 4. लवणता के लिए सहनशील सब्जी फसलें (डेसीसीमन्स/मीटर)

संवेदनशील सब्जी फसलें (4 डेसीसीमन्स/मीटर तक)	मध्यम सहनशील सब्जी फसलें (4–6 डेसीसीमन्स/मीटर)	सहनशील सब्जी फसलें (6–8 डेसीसीमन्स/मीटर)
सेम, मैथी, मूली, अजवाइन, मटर, बैंगन	शकरकन्द, टमाटर, लहसुन, गाजर, प्याज, फूलगोभी, खरबूजा, मिर्च, तरबूज, ककड़ी, कद्दू, भिण्डी, आलू, लौकी, सलाद, काली मिर्च, आर्टिचोक	सौंफ़, पालक, शलगम, करेला, प्याज (बीज की फसल), गोभी, चुकंदर, एस्परेगस

तालिका 5. क्षारीयता के लिए सब्जियों की सहिष्णुता

संवेदनशील फसलें (ईएसपी 20 से कम)	मध्यम सहनशील फसलें (ईएसपी 20–40)	सहनशील फसलें (ईएसपी 40 से अधिक)
मटर, लोबिया, ग्वार, अदरक, हल्दी	टमाटर, लहसुन, भिंडी, मूली, गाजर, फूलगोभी, मिर्च, प्याज, आलू, ऐश गॉर्ड, धनिया, मैथी, सौंफ	बैंगन, पालक, चुक़ंदर

किनारा सीधे धूप के संपर्क में न हो, क्योंकि लवण वाष्पीकरण पानी के साथ प्रबुद्ध पक्ष की ओर बढ़ते हैं। इसका लाभ उठाते हुए, दोहरी पंक्ति ढलान क्यारी बुवाई विधि का सुझाव दिया गया है। लवण मेडों के उच्चतम स्थल (केंद्र) की ओर बढ़ते हैं, और इस प्रकार मेडों के दो ढलान वाले पक्षों में न्यूनतम मात्रा में लवण शेष होते हैं। इस प्रकार ढलान वाले पक्षों पर बोए गए बीज/रोपण लवण से बचते हैं।

घौंसला बुवाई: फसलें जैसे मटर, पालक, मैथी, मसाले (सौंफ़ और धनिया), प्रत्यारोपित फसलें, समतल क्षेत्रों में बोई जाती है। यह सलाह दी जाती है कि एक ही स्थान पर कई बीज/पौधे (2–3) बोएं या लगाएं। अंकुरण के बाद, एक जगह पर एक से दो स्वस्थ पौधों को छोड़कर बाकी पौधे निकाल दिए जाते हैं। निकाले गए पौधों की जड़ों के गलने से सूक्ष्म बिल बन जाते हैं जो फसल को ठहराव और अच्छा वातावरण देने में मदद करते हैं। इसके अलावा मिट्टी के जैविक गुणों में भी सुधार होता है।

प्रत्यारोपित फसलों की नर्सरी को कमजोर लवणता वाली क्यारी में तैयार करना

यह देखा गया है कि कमजोर लवणता वाली मिट्टी में सब्जी की पौध को तैयार करने से पौध लवणता वाली मिट्टी को कुछ हद तक स्वीकृत कर लेती है और जब ऐसे रोपण अधिक नमकीन क्षेत्रों में प्रत्यारोपित होते हैं, तो वे बेहतर प्रदर्शन करते हैं और प्रारंभिक नमक की चोट से बचते हैं।

तालिका 6. क्षारीयता के लिए सहनशील किस्में

सब्जी फसल	किस्में
टमाटर	अंगूरलता , आज़ाद टी 2
मैथी	पूसा अर्ली बंचिंग
पालक	के हरी चिकारी
मिर्च	ज्वाला, चमन
लहसुन	गट्टर गोला, हंसा
भिंडी	काशी क्रान्ति, पूसा सावनी, वीआरओ 112, एई 70

कार्बनिक पदार्थ और रासायनिक उर्वरकों का अतिरिक्त उपयोग

कार्बनिक पदार्थ की अतिरिक्त मात्रा के उपयोग से मिट्टी के भौतिक और जैविक गुणों में सुधार होता है और इस प्रकार पौधों की वृद्धि में सुधार होता है। यह सूचित किया गया है कि लवणीय मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की उच्च खुराक आलू, टमाटर, बैंगन और भिंडी में लाभकारी होती है। क्योंकि संचयन या प्रतिस्पर्धा के कारण पोषक तत्वों की अनुपस्थिति की समस्या लवण प्रभावित मिट्टी में मौजूद होती है, पर्ण छिडकाव के माध्यम से आपूर्ति करना फायदेमंद होता है।

मिट्टी को हमेशा नम रखें

लवणीय मिट्टी में सब्जियों की फसलों को बढ़ाने के लिए लगातार और हल्की सिंचाई आवश्यक होती है। पर्याप्त जल निकास का प्रावधान भी आवश्यक है। फव्वारा और ड्रिप सिंचाई बेहतर होती है क्योंकि वे जड़ क्षेत्र के पास सतही परत को गीला रखते हैं और पौधे के वायुमंडल की नमी को भी बढ़ाते हैं, इस प्रकार पानी की वाष्पीकरण दर को कम करते हैं।

जैविक उपाय

लवणों के खतरों से बचाव के लिए जैविक तरीकों का उपयोग करने के लिए बहुत कम प्रयास किए गए हैं। चेनोपोडियम प्रजातियों जैसे कुछ पौधे बड़ी मात्रा में नमक को अवशोषित करते हैं जिन्हें विकसित किया जा सकता है और खेतों से नमक सांद्रता को कम करने के पूर्ण विकास के बाद हटा दिया जाता है। वेसिकुलर–आर्बसकुलर माइकोराइजा फंजाई (वीएएम) पौधे की वृद्धि और लवणीय मिट्टी में उपज बढ़ाने के लिए जाना जाता है।

मिट्टी का संशोधन और अन्य रसायनों का उपयोग

15 टन गोबर की खाद/हैक्टर के साथ 10 सेंमी. रेत परत का उपयोग लवण प्रभावित मिट्टी की भौतिक स्थिति में सुधार करता है और टमाटर, बैंगन, मिर्च और कद्दू फसलों की उपज और वृद्धि में मदद करता है। जिप्सम के उपयोग से क्षारीय मिट्टी में विभिन्न फसलों के उद्भव और उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

अच्छी गुणवत्ता और लवणीय जल के संयोजन का उपयोग

ऐसी परिस्थितियां जहाँ पानी बहुत लवणीय है और फसलों को उगाने के लिए सीधे उपयोग में नहीं लाया जा सकता या फसलों की वाष्पीकरण की आवश्यकता को पूरा करने के लिए सिंचाई के लिए उपलब्ध अच्छी गुणवत्ता वाला पानी अपर्याप्त है। इन परिस्थितियों में, अधिकतम फसल उत्पादन प्राप्त करने की रणनीतियों में लवणीय और अच्छी गुणवत्ता वाले जल का उपयोग किया जाता है। संयोजन रीति में, या तो लवणीय और अच्छे पानी को मिश्रित कर सिंचाई के लिए मध्यम लवणता का पानी तैयार किया जाये जिसे पूरे फसली मौसम में उपयोग किया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से, विकास के अधिक महत्वपूर्ण चरणों, उदाहरण के लिए अंकुरण और बीज जमाव में सिंचाई के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले पानी का उपयोग किया जा सकता है, और उन चरणों में लवणीय पानी, जहाँ फसल अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु है क्योंकि अधिकांश पौधों को वृद्धि के साथ लवणता को सहन करने के लिए जाना जाता है। मौसमी चक्रीय उपयोग जहाँ गैर–नमकीन पानी का उपयोग लवण संवेदनशील फसलों/सहिष्णु फसलों के शुरुआती चरणों के लिए किया जाता है ताकि संक्रमित नमक जो पहले से उगाए जाने वाले सहिष्णु फसलों को लवणीय पानी के साथ सिंचाई की वजह से पैदा हुआ है उसे घोल कर बहाया जा सके। ऐसी प्रबंधन रणनीति शुष्क जलवायु के लिए बहुत कम वर्षा के साथ बेहतर काम कर सकती है लेकिन मानसून के मौसम में यह प्राकृतिक घटना है।

समाप्त

अश्वनी कुमार[1], अनिता मान[1], अरविंद कुमार[1], चारुलता[1], शोभा सोनी[1], पूजा[2] एवं बाबू लाल मीणा[1]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ashwani.kumar1@icar.gov.in

लवण सहनशील बारहमासी चारा हैलोफाइट

लवणता, नमक प्रभावित क्षेत्रों में कई सामाजिक और आर्थिक समस्याओं जैसे जानवरों और मनुष्यों की स्वास्थ्य संबंधी समस्या तथा मनुष्यों के गरीबी जीवन रेखा स्तर का कारण बनी हुई है। लवण प्रभावित क्षेत्रों में लवणरोधी पौधों की प्रजातियों का चयन और उनका सुधार, लवणता द्वारा होने वाली समस्याओं पर काबू पाने के लिए बहुत आर्थिक और संभावित है। कुछ हैलोफाइटस जैसे *डाइकेन्थियम एनुलेटम, स्पोरोबोलस मारजीनेटस, यूरोकोन्ड्रा सेटूलोसा, एल्यूरोपस लेगोपोइडेस* तथा *स्यूडा नुडीफ्लोरा* की कुछ प्रजातियाँ कच्छ के लवणीय/क्षारीय शुष्क मैदानों में पशुधन और डेयरी विकास के लिए घास–चारे के रूप में बहुत अधिक महत्व रखती है। इन घासों के आर्थिक तथा पशु पोषण के महत्त्व को देखते हुए, वर्तमान अध्ययन लवणीय तनाव के सापेक्ष सुनिश्चित हैलोफाइटस की प्रतिरोधिता निर्धारित करने के लिए किया गया था।

विश्व के कई कृषि क्षेत्रों में मिट्टी और पानी की लवणता में वृद्धि, खाद्य फसलों के उत्पादन में बड़ी समस्या का कारण बन गयी है जिससे पशुधन कृषि के लिए कुछ नई संभावनाएं भी प्रस्तुत हुई है। भारत विश्व की 24 प्रतिशत पशुधन आबादी का हिस्सा है और पशुधन उत्पादन भारतीय कृषि का आधार होने के साथ ही राष्ट्रीय विकास घरेलू उत्पाद में लगभग 7 प्रतिशत योगदान देता है। भारत में आगामी वर्षों में पशुधन की आबादी 0.55 प्रतिशत की दर से बढ़ने की उम्मीद है और 2050 तक पशुओं की आबादी 781 मिलियन होने की संभावना है। भारत में कुल 35.6 प्रतिशत हरा चारा, 26 प्रतिशत शुष्क फसल अवशेषों और 41 प्रतिशत चारा सामग्री का अभाव है। मुख्य चिंता का विषय पूरे वर्ष हरा चारा उपलब्ध कराना है। जबकि बढ़ते औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, अनाज और नकदी फसलों की बढ़ती खेती के चलते चारे की खेती के लिए भूमि की कमी के परिणामस्वरूप हरा चारा के उत्पादन में बाधा आ रही है। लवण सहिष्णु फसलों और घासों की खेती करके लवण प्रभावित बंजर भूमि को उपयोग में लाया जा सकता है, जिन्हें पशुधन चराई के लिए चारा और मिश्रित राशन के घटकों के रूप में उपयोग में लाना उपर्युक्त समस्या के विकल्पों में से एक है। मृदा लवणता कृषि के लिए एक बढ़ती समस्या है, जो विश्व के सबसे उत्पादक फसल क्षेत्रों को प्रभावित करती है। भारत में लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल लवण प्रभावित है जिसमें लवणीय और क्षारीय भूमि क्रमशः 40 और 60 प्रतिशत है। पानी की कमी और अधिक लवणता, भूमि में पौधों की वृद्धि में बाधा उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारक है। जलवायु परिवर्तन और सूखापन की संभावना के कारण, मरुस्थलीकरण को कम करने के लिए स्थानीय परिस्थितियों में अनुकूलित प्रजातियों की पहचान, चयन और परिचय के लिए तत्काल उपाय किए जा रहे हैं। इन क्षेत्रों में मिट्टी की अत्यधिक लवणता के कारण, लवण सहिष्णु लवणमृदोद्भिद् वनस्पति प्राकृतिक रूप में पायी जाती है। यह पारिस्थितिकी तंत्र कई फूल पौधों, झाड़ियों, पर्वतारोही, जड़ी बूटियों, पेड़ों और घासों का समर्थन करता है और स्थानीय लोगों और पशुओं के लिए ईंधन, चारा और लकड़ी की आपूर्ति करता है।

अत्यधिक लवणता और अन्य प्रतिकूल कारकों के कारण पारंपरिक फसलों के विकास के लिए लवणीय भूमि उपयुक्त नहीं है। यदि पौधों में लवण सहनशीलता बढ़ाई नहीं गयी तो लवणीय भूमि खेती में प्रयोग नहीं की जा सकेगी। इससे राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा और जैव ईंधन उत्पादन को गंभीर रूप से खतरा हो

सकता है। फसल उत्पादकता की बढ़ोत्तरी के लिए, इन क्षेत्रों को लवण मुक्त करने अथवा लवण सहनशील फसलों का उपयोग में लाया जाना एकमात्र विकल्प है। लवण सहनशील फसलों के उपयोग से भूमि में लवण की मात्रा कम नहीं होती है, जबकि लवणमृदोद्भिद् (*हैलोफाइट्स*) वनस्पति में लवणों को प्रभावी ढंग से अवशोषित और निष्कासित करने की क्षमता होती है। अधिकांश फसलें और चारा प्रजातियाँ जिनका आधुनिक कृषि में उपयोग किया जाता है, लवण संवेदनशील (*ग्लाइकोफाइट्स*) होती है और संवृद्धि माध्यम में लवण की केवल सीमित मात्रा सहन कर सकती है। लवणमृदोद्भिद् (*हैलोफाइट्स*) ऐसे पौधे हैं जो लवणीय परिस्थितियों में उगते हैं, और पशुधन के लिए चारे या मिश्रित राशन के घटकों में मोटे चारे के रूप में उपयोग किए जाते हैं। लवण सहनशील चारा, विशेष रूप से लवणमृदोद्भिद् (*हैलोफाइट्स*) घास जो लवणीय सिंचाई के तहत अच्छी तरह से बढ़ सकती है, संभावित रूप से मूल्यवान वैकल्पिक संसाधन होंगे और पशुधन उत्पादन को बनाए रखने में एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। लवणमृदोद्भिद् (हैलोफाइट्स), स्वाभाविक रूप से विकसित लवण सहनशील पौधे हैं जो स्थलीय पौधों की प्रजातियों में 2 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके पास लवणीय परिस्थिति में अपने जीवन चक्र को पूरा करने की क्षमता होती है, जहाँ 99 प्रतिशत लवण संवेदनशील प्रजातियाँ सोडियम क्लोराइड की विषाक्तता के कारण मर जाती है, और हैलोफाइट्स इस प्रकार संभावित नई फसलों का स्रोत बन जाता है।

सुनिश्चित हैलोफाइट्स कच्छ, भुज (गुजरात) के अत्यन्त लवणीय–क्षारीय शुष्क मैदानों से एकत्रित किये गए और विभिन्न क्षारीयता, लवणता प्रभावित वातावरण के तहत उनके बायोमास क्षमता और पर्यावरण के प्रति शारीरिक प्रतिक्रियाओं का मूल्यांकन करने के लिए सी.एस.एस.आर.आई, करनाल में स्थापित किए गए। यह प्रयोग 6 हैलोफाइट्स और नियंत्रित, क्षारीयता/लवणता वाले 6 अलग–अलग स्तरों पर किया गया और पाया कि सभी हैलोफाइट्स द्वारा सामान्य स्थिति पर गैस विनिमय गुण अधिकतम दिखाया गया। सामान्य स्थिति पर उच्चतम प्रकाश संश्लेषण दर तथा तेज तनाव के साथ कम प्रकाश संश्लेषण दर अभिलेखित की गयी, जो कि 35 ईसी की लवणीय तनावपूर्ण नियंत्रित स्थिति के तहत न्यूनतम दर्ज की गई।

तनाव की प्रबल स्थिति में ये हैलोफाइटस अपनी पत्तियों में सोडियम तथा क्लोराईड की उच्च मात्रा अवशोषित करते हैं। *स्यूडा नुडीफ्लोरा* सामान्य स्थिति में सोडियम की उच्च मात्रा (2.75 प्रतिशत) जमा करती है जबकि 35 ईसी की लवणीय तनावपूर्ण नियंत्रित स्थिति में यह 17.33 प्रतिशत पाई गई। जबकि *एल्यूरोपस लेगोपोइडेस*, 35 ईसी की तनावपूर्ण स्थिति में सोडियम की 10.23 प्रतिशत मात्रा जमा करते है जो कि सामान्य स्थिति (1.65 प्रतिशत) की तुलना में 6 गुना अधिक है। क्लोराइड मात्रा वृद्धि भी इसी तरह की पाई गई। 35 ईसी की लवणीय तनावपूर्ण स्थिति पर *स्यूडा नुडीफ्लोरा* तथा *एल्यूरोपस लेगोपोइडेस* में पोटेशियम आयन की मामूली वृद्धि देखी गई। घुलनशील शर्करा की मात्रा क्षारीय तनावपूर्ण वातावरण में कम तथा लवणीय तनाव में अधिक पायी गयी। सामान्य स्थिति में *एल्यूरोपस लेगोपोइडस* और *स्यूडा नुडीफ्लोरा* में प्रोटीन की अधिकतम मात्रा (16.65 और 12.83 मिलीग्राम/ग्राम) जबकि पीएच मान 9.0 + ईसी 20 डेसी सीमन्स/मीटर लवणीय–क्षारीय मिश्रित तनावपूर्ण स्थिति में प्रोटीन की मात्रा 12.45 और 9. 37 मिलीग्राम/ग्राम प्राप्त हुई है। तनाव की स्थिति को बढ़ाने पर हैलोफाइट्स में लगभग 6 से 15 गुना ज्यादा प्रोलीन संचय तथा उच्चतर परासरणी अनुकूलन दिखाई दिया। जबकि सुखा जैवभार उत्पादन के परिणामस्वरूप *डाइकेन्थियम एनुलेटम, स्पोरोबोलस मारजीनेटस* एवं *एल्यूरोपस लेगोपोइडस* बदलती क्षारीयता के प्रति अत्यधिक सहिष्णु दिखाई दिए, क्योंकि बदलती क्षारीयता के प्रति इनमें सुखा तना जैवभार में वृद्धि,

अन्य दो प्रजातियों की तुलना में अधिक पायी गयी। जबकि *स्यूडा नुडीफ्लोरा, एल्यूरोपस लेगोपोइडस* एव *यूरोकोन्ड्रा सेटूलोसा* ने बदलती लवणता के प्रति अन्य दोनों प्रजातियों की तुलना में अत्यधिक सहिष्णुता प्रदर्शित की है। उपरोक्त अनुसंधान में *एल्यूरोपस लेगोपोइडस* का प्रदर्शन सभी हैलोफाइट्स प्रजातियों की तुलना में सबसे अच्छा रहा। क्योंकि *एल्यूरोपस लेगोपोइडस* प्रजाति ने बदलती लवणीय/क्षारीय प्रतिक्रिया के प्रति (दोनों स्थिति में) सुखा जैवभार उत्पादन सामान्य स्थिति की तुलना में अधिक प्रदर्शित किया है।

लवण सहनशील चारा, विशेष रूप से घास जो खारे पानी से सिंचाई करने पर भी अच्छी तरह से बढ़ सकती है, संभावित रूप से पशुधन उत्पादन को बनाए रखने में मूल्यवान वैकल्पिक चारा संसाधन होने में एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। वनस्पति अवस्था की स्थिति के दौरान प्रोटीन संश्लेषण प्रक्रिया सबसे अधिक सक्रिय होती है जो पौधे के पूर्ण विकसित होने पर घटती रहती है। लवणीय तनाव की स्थिति ने सभी हेलोफाइटिक घास और गैर–घास प्रजातियों में अशोधित प्रोटीन को कम कर दिया। अशोधित प्रोटीन तत्व उच्चतम *स्यूडा नूडीफ्लोरा* (9.36 प्रतिशत) तथा इसके बाद *स्पोरोबोलस मारजीनेटस* (8.70 प्रतिशत), *यूरोकोन्ड्रा सेटूलोसा* (8.35 प्रतिशत), *एल्यूरोपस लेगोपोइडस* (7.83 प्रतिशत) और *डाइकेन्थियम ऐनुलेटम* (5.05 प्रतिशत) में देखा गया। अनुसंधानों से ज्ञात है कि 8 प्रतिशत से कम अशोधित प्रोटीन युक्त चारा अमाशय के सूक्ष्मजीवों की अनुकूलतम गतिविधि के लिए आवश्यक अमोनिया स्तर प्रदान नहीं कर सकता और उच्च स्तर के पशु उत्पादन को प्राप्त करने के लिए ऐसे चारे को उपयुक्त पोषक तत्वों के साथ मिलाने का सुझाव दिया जाता है। जो पशु हेलोफाइट पौधों पर निर्भर हैं वे अपने अमाशय के सूक्ष्मजीवों की प्रजातियों को अनुकूलित करके आहार में उच्च ऊर्जा या ऊर्जा स्रोतों के साथ पूरक चारे के रूप में उपयोग कर सकते हैं।

डाईकेन्थियम में सामान्य डिटर्जेंट फाइबर तत्व उच्चतम (71.9 प्रतिशत) मात्रा में पाए गए तथा इसके बाद यूरोकोन्ड्रा (69.13 प्रतिशत) और स्यूडा (66.32 प्रतिशत) में पाए गए। इसी प्रकार एसिड डिटर्जेंट फाइबर तत्व, यूरोकोन्ड्रा (33.36 प्रतिशत) में सबसे अधिक तथा इसके बाद स्यूडा (46.55 प्रतिशत) और डाईकेन्थियम (46.01 प्रतिशत) में पाए गए। स्यूडा में उच्चतम एसिड डिटर्जेंट लिग्निन तत्व (6.28 प्रतिशत) पाए गए तथा इसके बाद डाईकेन्थियम (5.64 प्रतिशत) और यूरोकोन्ड्रा (5.46 प्रतिशत) में पाए गए। लवणता और क्षारीयता के मिश्रित तनाव की स्थितियों में, सभी हेलोफाइटिक घास और गैर–घास प्रजातियों ने सामान्य डिटर्जेंट फाइबर और एसिड डिटर्जेंट फाइबर तत्व को कम कर दिया। लवणता और क्षारीयता के मिश्रित तनाव की स्थितियों में सभी हेलोफाइट में सामान्य डिटर्जेंट फाइबर और एसिड डिटर्जेंट फाइबर तत्व में कमी पाई गयी। लिग्निन तत्व एक प्रमुख कोशिका भित्ति का घटक माना जाता है जो जुगाली करने वाले पशु के लिए पोषक उपलब्धता को सीमित कर सकता है।

उपरोक्त अनुसंधान के सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए (हैलोफाइट्स पर लवणों के सभी प्रभावों) यह कहना मुश्किल नहीं कि *डाइकेन्थियम एनुलेटम* एवं *स्पोरोबोलस मारजीनेटस* को हल्की क्षारीय भूमि से लेकर अधिक क्षारीय भूमि वाले क्षेत्रो में चारे के रूप में उगाया जा सकता है।

यह दोनों प्रजातियाँ सभी प्रकार के मवेशियों के चारे के लिए बहुत अधिक महत्त्व रखती है तथा *डाइकेन्थियम एनुलेटम*, तथा *स्पोरोबोलस मारजीनेटस* पहले से ही क्षारीय क्षेत्रों के मौजूदा पर्यावरण स्थितियों के अनुकूल है। तथा दूसरी तीनों प्रजातियों *स्यूडा नुडीफ्लोरा, एल्यूरोपस लेगोपोइडस* एवं *यूरोकोन्ड्रा सेटूलोसा*

मृदा पीएच मान 10 (क्षारीय) में हैलोफाइटिक घास का वृद्धि प्रदर्शन

संतृप्त वैद्युत चालकता 50 डेसी सीमन्स/मीटर (लवणीय) में हैलोफाइटिक घास का वृद्धि प्रदर्शन

को लवणीय क्षेत्रों/सिंचाई के लिए लवणीय भूजल/समुद्री जल रिसाव वाले क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। कच्छ के लवणीय– क्षारीय शुष्क मैदानों के उचित प्रबंधन के साथ इन घासों का उत्पादन बढाया जा सकता है तथा वहाँ के मालधारी समुदाय के लोगों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जा सकता है। वर्तमान अध्ययन से यह पुष्टि भी की जा सकती है कि इन घासों को ऐसे लवणग्रष्त क्षेत्रों में भी प्रतिस्थापित किया जा सकता है जिन लवणग्रस्त क्षेत्रों में मवेशियों के लिए चारे की गंभीर समस्याओं का सामना करना पड रहा है।

समाप्त

डी॰ बर्मन, एस॰के॰ सारंगी, एस॰ मंड़ल, के॰के॰ महंता,
यू॰के॰ मंड़ल, टी॰ड़ी॰ लामा, एस॰ राउत एवं कैलाश प्रजापत[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, केनिंग टाउन–743329 (पश्चिम बंगाल)
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: burman.d@gmail.com

तटीय लवणग्रस्त क्षेत्रों के प्रबंधन एवं आय बढ़ाने के लिए उन्नत तकनीकियाँ

देश में तटीय कृषि पारिस्थितिकी तंत्र 108 लाख हैक्टर क्षेत्र में फैला हुआ है जिसकी तट रेखा पूर्वी तट पर बंगाल की खाड़ी एवं पश्चिमी तट पर अरब सागर के तटों के रूप में 7517 किमी. लम्बी है। तटीय क्षेत्र देश के 9 राज्यों एवं दोनों द्वीप समूहों पर फैला हुआ है। समुद्र तट के आंतरिक क्षेत्र विभिन्न भूआकृति एवं स्थलीय विशेषताओं जैसे पर्वत, घाटियां, तटीय समतल क्षेत्र, जलधाराओं, जलवायु परिस्थितियों, मृदा विशेषताएं व जल बजट एवं विविध फसलें आदि युक्त हैं। पूर्वी तट पर बड़े डेल्टा क्षेत्र को देश का धान का कटोरा माना जाता है। कृषि, कृषि वानिकी, सिल्वीकल्चर और मछली पालन इस क्षेत्र की मुख्य क्रियाएं हैं, परन्तु इस क्षेत्र की उत्पादकता विभिन्न परिस्थितियों के कारण बहुत कम है। चक्रवातों के पश्चात् लवणीय पानी का भराव तथा डेल्टा क्षेत्र की नदियों जैसे गंगा (सुन्दरवन) महानदी, गोदावरी आदि एवं अन्य नदियों के लवणीय जल के कारण मृदा सतह के पास उथले खारे पानी का स्तर, तटीय क्षेत्रों की मृदा एवं जल अपघटन के मुख्य कारण है। जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री जल स्तर का बढ़ना इस क्षेत्र की मृदा एवं जल अपघटन के लिए अधिक खतरा है। उपयुक्त वैज्ञानिक योजनाओं एवं प्रबंधन द्वारा तटीय क्षेत्रों की कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है ।

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र केनिंग टाउन द्वारा अनुसंधान आधार पर इस क्षेत्र के लिए विभिन्न तकनीकियों का विकास किया गया है जिनका किसानों के प्रक्षेत्रों पर सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया गया है। पश्चिम बंगाल के तटीय क्षेत्रों के लिए विकसित की गई तकनीकियों को नीचे दिया गया है।

लवण प्रभावित तटीय भूमियों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए भूपरिवर्तन तकनीकियां

(क) फार्म तालाब

अतिरिक्त वर्षा जल को सिंचित करने के लिए 20 प्रतिशत फार्म क्षेत्र को प्रक्षेत्र तालाब में बदल दिया जाता है। तालाब की खोदी गई मिट्टी को समतल जमीन पर ऊँची उठाने के लिए डाल दिया जाता है जिससे ऊँची एवं मध्यम भूमि परिस्थितियां बन जाती है। इस प्रकार की भूमियों में धान की एकल फसल के स्थान पर विभिन्न तरह की फसलें साल भर ली जाती है। तालाब को वर्षा जल संचयन व मछली पालन के

फसल + मछली + पशुपालन

लिए प्रयोग किया जाता है। तालाब के पानी के उपयोग से फार्म पर फसलों एवं मछली पालन के साथ पशुपालन या मुर्गीपालन भी किया जा सकता है। ऊँची भूमि में खरीफ मौसम में जल भराव से मुक्त होने के साथ–साथ लवणों का जमाव भी कम होता है। अतः यह भूमि विभिन्न फसलों को साल भर उगाने में प्रयोग की जा सकती है।

(ख) गहरी कुंड एवं ऊँची मेड़

फसल +मछली पालऩ

लगभग 50 प्रतिशत फार्म जमीन को एकांतर ऊँची मेड (1.5 मी. शीर्ष चौड़ाई गुणा 1.0 मी. ऊँचाई गुणा 3.0 मी. तल की चौड़ाई) और गहरी नाली (3 मी. शीर्ष गुणा 1.5 मी. तल गुणा 1.0 मी. गहराई) में बदल देते हैं। नालियों में वर्षा जल को संचित किया जाता है जिसका प्रयोग रबी फसलों की सिंचाई करने में किया जाता है। नालियों में संचित जल का प्रयोग मछलीपालन एवं जरूरत के समय खरीफ फसलों की सिंचाई में भी किया जाता है। जमीन से ऊँची होने के कारण मेड़ जलभराव से मुक्त रहती है एवं नालियों में वर्षा का जल होने के कारण लवणता से भी मुक्त रहती है। मेड़ों पर खरीफ में धान की एकल फसल के अलावा सब्जियाँ और अन्य उद्यान फसलें/ बहुउपयोगी पेड़ वर्षभर उगाए जाते हैं। फार्म का बचा हुआ भाग व नालियां खरीफ मौसम के दौरान लाभदायक धान+मछली उत्पादन में उपयोग किया जाता है। रबी मौसम व ग्रीष्म ऋतु के दौरान फार्म क्षेत्र (ऊँची मेड़ व नालियों के अतिरिक्त) का प्रयोग कम जल मांग वाली फसलों के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

(ग) उथली नाली व मध्यम मेड़

धान+मछली उत्पादन+बहुउपयोगी वृक्ष

लगभग 75 प्रतिशत फार्म क्षेत्र मध्यम मेड़ (1.0 मी. शीर्ष चौड़ाई गुणा 0.75 मी. ऊँचाई गुणा 2.0 मीटर तल चौड़ाई) और उथली नाली (1.0 मी. शीर्ष गुणा 1.0 मी. तल चौड़ाई गुणा 0.75 मी. गहराई) में परिवर्तित कर दिया जाता है एवं दो लगातार मेड़ों एवं नाली के बीच 3.5 मीटर का अंतराल रखा जाता है। नालियों को खरीफ में वर्षा जल संचयन एवं धान+मछली उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है। अन्य फसल क्रियाएं गहरी नाली एवं ऊँची मेड़ के समान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस विधि में रबी के मौसम में कम पानी के साथ नालियों में धान की फसल ली जा सकती है।

लाभः वर्षा जल संचयन द्वारा अतिरिक्त जल स्रोत का विकास, फसल सघनता में 200 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी, मृदा लवणता में कमी व सतही जल विकास में सुधार, विविध फसलों, मछली एवं पशुपालन, आय में 6–9 गुना बढ़ोत्तरी तथा रोजगार उत्पन्न होना।

(घ) धान सह ताजा जल मछली पालन

इस विधि में फार्म की परिधि के साथ–साथ बाहरी सीमा से 3.5 मी. जगह छोड़कर नाली (3.0 मी. शीर्ष चौड़ाई गुणा 1.5 मी. तल चौड़ाई गुणा 1.0 मी. गहराई) बनाई जाती है और खोदी गई मिट्टी बंध (लगभग 1.5 मी. शीर्ष चौड़ाई गुणा 1.0 मी. ऊँचाई गुणा 3.0 मी. तल चौड़ाई) बनाने में प्रयोग की जाती है। खेत के एक कोने में छोटा गडढा बनाया जाता है ताकि जब नालियों में पानी नहीं रहे तो मछलियाँ इसमें रह सके। बंध सब्जियों एवं हरी खाद के लिए फसल/फलीय पौधे/बहुउपयोगी वृक्ष वर्षभर उगाने हेतु उपयोग में ली जाती है। नालियों व फार्म का अन्य भाग खरीफ में लाभदायक धान+मछली खेती के लिए प्रयोग किया जाता है।

(ड़) धान सह मछली पालन + खारा जल मछली पालन

जमीन को धान सह मछली प्रणाली की तरह परिवर्तित कर दिया जाता है और वर्षा कालीन समय में धान–सह मछली पालन किया जाता है। रबी और ग्रीष्म मौसम के दौरान भूमि को सतही व उपसतही खारे पानी की उपलब्धता के साथ खारे पानी वाली अधिक लाभदायक मछली पालन में प्रयोग किया जाता है। खारा पानी मछली पालन के पश्चात् इसी भूमि को वर्षा ऋतु के शुरूआत में एक–दो बारिस के पश्चात् सामान्य धान सह मछली पालन में प्रयुक्त कर सकते हैं। इस तरह का मछली पालन उन्हीं स्थानों पर करना चाहिए जहाँ ग्रीष्म मौसम के बाद भूमि से खारे पानी को बाहर निकालने की सुविधा उपलब्ध हो।

खरीफ में धान सह मछली पालन

टपका सिंचाई पद्धति द्वारा पानी का दक्ष उपयोग

तटीय क्षेत्रों में गैर मानसून समय में फसलों के लिए पानी की कमी एक मुख्य समस्या है। टपका सिंचाई विधि उद्यानों (नारियल, आम, अमरूद, केला, चीकू आदि), सब्जियों (टमाटर, बैंगन, फूल गोभी, पत्ता गोभी, मिर्च, नोल–खोल, आलू आदि), फसलों (गन्ना, कपास आदि) और अन्य फसलों (बेरी, रिजका, फूल आदि) में रबी मौसम में न्यूनतम अच्छी गुणवत्ता सिंचाई जल के दक्ष उपयोग हेतु प्रयोग की जा सकती है। टपका सिंचाई प्रणाली की रूपरेखा पानी का स्रोत, मिट्टी का प्रकार, फसल एवं क्षेत्र आदि परिस्थितियों पर निर्भर करती है। सब्जियों जैसे भिण्डी के लिए पार्श्व पाइपों की दूरी 70 सेंमी. व फसल दूरी 30 सेंमी. होगी। इस पद्धति से 1.5 डेसीसीमन्स/मीटर वैद्युत चालकता वाला लवणीय जल प्रयुक्त किया जा सकता है।

लाभः 40–50 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत, 20 प्रतिशत तक फसल उपज में बढ़ोत्तरी व 60 प्रतिशत तक श्रमिकों में कमी।

पूर्व अंकुरित बीजों की बिजाई ड्रम विधि द्वारा ग्रीष्म धान की फसल स्थापना

आठ पंक्तियों वाला बिजाई ड्रम 1.8 मीटर चौड़ा होता है जिसके प्रत्येक ड्रम का व्यास व लम्बाई क्रमशः 0. 18 एवं 0.25 मीटर होती है। लाइनों के मध्य दूरी 20 सेंमी. होती है। प्रत्येक ड्रम की क्षमता 2 किग्रा. पूर्व अंकुरित बीज की होती है। हालांकि ड्रम को पूरा नहीं भरकर 1/3 हिस्सा खाली रखना चाहिए ताकि बीज

बिजाई ड्रम

पूर्व अंकुरित बीज

आसानी से छिद्र से निकल सकें। बीज अंकुरों की लम्बाई 7–8 मिमी. से ज्यादा नहीं होनी चाहिए ताकि अंकुर आपस में उलझ न जाएं। जमीन सामान्य तरीके से कद्दू (पड़लिंग) की जाती है। कद्दू करने के पश्चात् खेत का अतिरिक्त पानी बाहर निकाल देते हैं तथा अंकुरित बीजों को बिजाई ड्रम में भरकर कद्दू किये हुए खेत में हाथ से चलाकर बिजाई करते हैं। खेत की 2–3 दिन तक सिंचाई नहीं करते ताकि बीज अच्छे से जम जाए। खेत में जैसे–जैसे पौध बढ़ने लगती है, पानी की गहराई बढ़ाते जाते हैं।

लाभः उत्पादन लागत में 10 प्रतिशत कमी, नर्सरी तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती, दाना उपज में लगभग 33 प्रतिशत इजाफा व कम मानव श्रम की आवश्यकता।

आद्र मौसम के धान के लिए सीधी बिजाई तकनीक

वर्षा आधारित उथली निचली भूमि कभी–कभी बाढ़ के कारण 8–10 दिन जलभराव की समस्या से प्रभावित होती है। तटीय क्षेत्रों में जलभराव की समस्या सामान्यतः धान की रोपाई के समय हो जाती है और यह समय फसल के जमाव का होता है जिससे फसल को नुकसान हो जाता है। इस समस्या के निदान के लिए धान की सीधी बिजाई तकनीक अपनाई जा सकती है। मानसून से पहले मई के अन्तिम सप्ताह में अच्छी

धान की सीधी बिजाई तकनीक

तरह तैयार किए गए खेत में 20 सेंमी. की दूरी पर कतार बनाकर धान की सुखे खेत में बुवाई कर देते हैं। मानसून की पहली बरसात के बाद मृदा की गर्मी से बीज अंकुरित होने लगते हैं। बुआई के 15 दिन बाद उचित पादप संख्या रखने के लिए पौधों की छंटाई या बुआई करते है। खरपतवार नियंत्रण के लिए चयनात्मक शाकनाशी का प्रयोग किया जाता है।

लाभः जल भराव से फसल नुकसान नहीं हो पाता, उत्पादन लागत लगभग 65 प्रतिशत कम आती है तथा शुद्ध आय में लगभग 46 प्रतिशत बढोत्तरी होती है।

ग्रीष्म धान के लिए परिवर्तित धान सघनीकरण पद्धति (एमएसआरआई)

अन्य वातावरण के लिए उपयुक्त धान सघनीकरण (एसआरआई) पद्धति की सभी क्रियाएं तटीय लवणीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है। परिवर्तित विधि के अंतर्गत नर्सरी को उठी हुई क्यारियों में लगाना, लवणों को बहाव द्वारा बाहर करने के लिए सिंचाई सुविधा का होना, उचित मात्रा में गोबर की खाद का प्रयोग आदि क्रियाएं शामिल की जाती हैं। लवण तनाव की परिस्थिति में धान की पौध अवस्था काफी संवेदनशील होती है, इसी तरह एक पौध रोपण की परिस्थिति में पौध का सुख जाना भी एक समस्या है जिसका निदान आवश्यक है। 8–12 दिन की पौध की जगह सामान्यतया ज्यादा दिनों की पौध (15–18 दिन) की रोपाई करनी चाहिए एवं यदि पौध मर जाती है तो उसकी जगह दोबारा रोपाई करनी चाहिए। जड़ क्षेत्र से लवणों के निक्षालन के लिए अतिरिक्त सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। उर्वरक के साथ गोबर की खाद का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग, धान के साथ एजोला को उगाना, एजोस्पीरीलम जैव उर्वरक का प्रयोग, पीएसबी का प्रयोग एवं फंफूद जनित बीमारियों के लिए ट्राइकोड्रमा का प्रयोग करना चाहिए।

धान की पराली की पलवार के साथ आलू की शून्य जुताई विधि द्वारा खेती

शून्य जुताई आलू की खेती द्वारा एकल फसल पद्धति वाली तटीय लवणीय मृदाओं को बहु–फसली खेती में परिवर्तित किया जा सकता है। इस पद्धति में खरीफ धान की कटाई के तुरंत बाद नम मिट्टी में आलू को सीधे लगा दिया जाता है। आलू से आलू की दूरी 10–15 सेंमी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30–35 सेंमी. रखी जाती है इसके पश्चात् आलूओं को सुखी कम्पोस्ट अथवा गोबर की खाद से ढक देते हैं। इसके बाद एनपीके उर्वरक (10–26–26) का प्रयोग करते हैं। संपूर्ण जगह को ढ़कने के लिए कम्पोस्ट के उपर धान की पराली की मोटी परत (15–20 सेंमी.) द्वारा ढक दिया जाता है। बुवाई के 1 माह बाद घुलनशील यौगिक उर्वरक (जैसे 19–19–19 किग्रा. नत्रजन–फॉस्फोरस–पोटाश) का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। बुवाई के 45 दिन बाद इन्हीं उर्वरकों का द्वितीय पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। तीसरा छिड़काव जल घुलनशील

शून्य जुताई व सामान्य विधि में आलू की तुलना

खुदाई के समय शून्य जुताई विधि से प्राप्त आलू

उर्वरक 13–0–45 किग्रा. नत्रजन–फास्फोरस–पोटाश का अच्छे कंद विकास के लिए करना चाहिए। शून्य जुताई द्वारा आलू की खेती में तीन सिंचाइयों की आवश्यकता होती है जबकि सामान्य विधि में 5 से 6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। इस विधि द्वारा आलू की जल्दी बुवाई व खुदाई हो जाती है जिससे किसान रबी मौसम में अन्य दाल वाली फसल जैसे मूंग आदि भी ले सकते हैं।

लाभः इस विधि द्वारा आलू उगाने से सिंचाई की आवश्यकता कम होती है, पिछले मौसम की मृदा नमी का समुचित उपयोग हो जाता है, मृदा लवणता में कमी व मृदा का स्वास्थ्य सुधार होता है, उत्पाद की गुणवत्ता बेहतर होती है, फसल सघनता उपज एवं लाभ में वृद्धि होती है। सामान्य विधि में आलू की उपज लगभग 18.0 टन/हैक्टर प्राप्त होती है जबकि शून्य जुताई विधि में लगभग 19.0 टन/हैक्टर उपज मिलती है। इसी प्रकार सामान्य विधि में उत्पादन लागत रुपये 1,06,000 प्रति हैक्टर आती है जबकि शून्य जुताई विधि में केवल रुपये 73000/हैक्टर लागत आती है।

तटीय क्षेत्रों की अम्लीय सल्फेट मृदाओं की उत्पादकता बढ़ाना

अम्लीय सल्फेट/अम्लीय लवणीय मृदाएं (पीएच 4.0 से कम) बहुत कम उत्पादन देती है। इस प्रकार की मृदाओं में चुने की आवश्यक मांग का 50 प्रतिशत प्रयोग और अधिक फॉस्फोरस प्रयोग के साथ हरी खाद या अन्य कार्बनिक खादों के प्रयोग द्वारा अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। सीप आवरण (ओइस्टर शैल) को स्थानीय उपलब्ध चूने के सस्ते स्रोत के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। रॉक फॉस्फेट को भी वैकल्पिक सस्ते चुने के स्रोत के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

उन्नत लवण सहनशील धान की किस्में

तटीय क्षेत्रों में खरीफ एवं रबी मौसम में धान एक महत्वपूर्ण फसल है। खरीफ मौसम में जल भराव या जलमग्नता मृदा, लवणता व अच्छी गुणवत्ता सिंचाई जल की कमी आदि धान की खेती में मुख्य बाधाएं हैं। इन समस्याओं के लिए केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र केनिंग टाउन ने धान की सहनशील उन्नत किस्मों का विकास किया है जिनका विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1. धान की लवण सहनशील उन्नत किस्में

किस्म	पादप ऊँचाई (सेंमी.)	परिपक्वता (दिन)	लवण सहनशीलता (डे़सीसीमन्स/मी.)	दानों का प्रकार	दाना उपज (कुंटल/हैक्टर)
मोहन (सीएसआर 4)	75	125	6.0–8.0	मध्यम मोटा	40–45
सीएसआर 6	लम्बी ईंडिका	150	6.0–8.0	लम्बा व पतला	30–35
केनिंग 7	70–77	130	6.0–8.0	मध्यम मोटा	33–40
सीएसटी 7–1	90–95	135	6.0–8.0	मध्यम मोटा	45–50
सुमाती	90–105	145	6.0–8.0	लम्बा व पतला	45–50
उत्पला	90–100	145	6.0–8.0	लम्बा व पतला	40–45
भूथनाथ	100–115	145	6.0–8.0	लम्बा व पतला	40–45
सीएसआरसी (एस) 21–2–5–बी–1–1	90–100	140	4.0–6.0	मध्यम मोटा	35–40
अमल–माना	130–145	135	4.0–6.0	लम्बा व पतला	35–40

समाप्त

अजय कुमार भारद्वाज एवं राजेन्द्र कुमार यादव
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ak.bhardwaj@icar.gov.in

लवणग्रस्त मृदा व जल गुणवत्ता के मापदंड व सुधार की सिफारिशें

उन्नत कृषि के लिए मिट्टी की गुणवत्ता अत्यधिक आवश्यक है। मिट्टी व पानी के परीक्षण से यह सुनिश्चित करना आवश्यक होता है कि मिट्टी व पानी कृषि के लिए उपयोगी है या नहीं। अगर नहीं है तो क्या करना चाहिये जिससे उन्हें उपयोगी बनाया जा सके। परीक्षण कर हम कृषि के क्षेत्र में अधिक से अधिक फसलों का उत्पादन कर सकते हैं। मिट्टी परीक्षण से भूमि में पोषक तत्वों व लवणों की मात्रा के बारे में जानकारी मिलती है। मिट्टी परीक्षण का मुख्य उद्देश्य होता है कि मिट्टी की उर्वरता को मापना और पता लगाना कि भूमि में कौन से तत्व व लवण कम या ज्यादा है, इसी तरह पानी की गुणवत्ता की जाँच सिंचाई के लिए उपयोगिता को बताती है। मिट्टी व पानी की गुणवत्ता की रिपोर्ट के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किसी कमी को कैसे दूर किया जाए ताकि फसल का उत्पादन व जमीन की उत्पादकता में कमी न आए। यदि फसलों के विकास और उनकी उपज में कुछ समस्या आती है तो किसान को उस मिट्टी की जाँच करानी चाहिए जहाँ फसल उगाई गई हो। पौधों के विकास के दौरान पोषक तत्वों की आपूर्ति व उपलब्धता मिट्टी व सिंचाई जल की गुणवत्ता के आधार पर निर्धारित की जाती है। खासतौर पर लवण प्रभावित मिट्टी का परीक्षण करने के बाद, कृषि वैज्ञानिक किसानों को ऐसी प्रबंधन प्रणालियों का पालन करने की सलाह दे सकते हैं जो उस भूमि पर फसल उत्पादन और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार लाए।

स्वस्थ व लवण प्रभावित मृदा में भिन्नता

ऐसी मिट्टी जिसमें पोषक तत्वों और कार्बनिक पदार्थों की संतुलित मात्रा होती है व जिसमें जल निकास अच्छी तरह होता है, एक स्वस्थ मृदा कहलाती है। स्वस्थ मृदा अच्छी उत्पादकता देती है और इसमें फसलों के विकास के दौरान कम समस्याएं उत्पन्न होती है। स्वस्थ मिट्टी फसल पोषण और उत्पादकता को बनाये रखती है, अगर मिट्टी के स्वास्थ्य का प्रबंधन विभिन्न प्रणालियों का पालन करते हुए किया जाए तो मिट्टी के स्वास्थ में गिरावट नहीं होती। एक पूरी तरह से स्वस्थ मिट्टी कम से कम लागत पर भी अधिकतम उत्पादकता देती है, इसलिए एक किसान के लिए मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखना बहुत महत्वपूर्ण है। स्वस्थ मिट्टी वह है जो कार्बनिक पदार्थों और पोषक तत्वों से समृद्ध होती है, इसमें अच्छी भौतिक विशेषताएं पायी जाती है और पोषक तत्वों के चक्र में फायदेमंद सूक्ष्मजीवों की अच्छी संख्या होती है। लवण प्रभावित मिट्टी में पोषक तत्वों और कार्बनिक पदार्थों की संतुलित मात्रा नहीं होती है।

मृदा में मौजूद लवणों के आधार पर मृदाएं तीन प्रकार की होती हैः क्षारीय मृदा (कल्लर/उसर), लवणीय (खारी/लूणी) मृदा और क्षारीय–लवणीय मृदा। ऐसी मृदा का गुण तीन कारकों पर निर्भर करता है जैसे संतृप्त वैद्युत चालकता, संतृप्त पीएच और विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशत। इन तीन कारकों के आधार पर मिट्टी को तीन श्रेणियों में बांटा गया है।

क्षारीय मिट्टी : वैद्युत चालकता (ईसी$_{इ}$) 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर ये कम, पीएच मान 8.5 से अधिक, ईएसपी 15 से अधिक

लवणीय मिट्टी : वैद्युत चलकता (ईसी$_{इ}$) 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक, पीएच मान 8.5 से कम, ईएसपी 15 से कम

क्षारीय/लवणीय मिट्टी : वैद्युत चालकता (ईसी$_{इ}$) 4.0 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक, पीएच मान 8.5 से अधिक, ईएसपी 15 से अधिक

लवण प्रभावित मिट्टी की सिफारिशें

किसान मिट्टी परीक्षण रिपोर्ट मिलने के बाद, ईसी और पीएच के आधार पर समस्याग्रस्त मिट्टी के सुधार के निम्नलिखित उपायों को अपना सकता है:

लवणीय मिट्टी का सुधार

लवणीय मिट्टी के सुधार के लिए फसलों की आवश्यकता से अधिक पानी जमीन में लगाया जाना चाहिए। यह वर्षा जल संग्रह या अच्छे नहरी जल द्वारा सिंचाई करके किया जा सकता है। इससे पौधों के जड़ क्षेत्र से लवण निष्कासित हो जाएगा। ऐसी मिट्टियों में जल निकास द्वारा भूजल स्तर को भी नीचा करना चाहिए। अंततः लवण सहिष्णु फसलों को ही लगाना चाहिए।

क्षारीय मिट्टी का सुधार

क्षारीय मिट्टी की उत्पादकता बढाने के लिए भी सुधार की आवश्यकता होती है। मृदा सुधार के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है (1) अत्यधिक क्षारीयता को निष्प्रभावी करना (2) मिट्टी के भौतिक–रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार लाने के लिए Ca^{2+} को Na^{+} के विनिमय स्थान पर प्रतिस्थापन करना। उचित कार्बनिक या अकार्बनिक सुधारकों का प्रयोग कर इन उद्देश्यों को हासिल किया जा सकता है। जिप्सम, फॉस्फोजिप्सम, पाइराइट्स, सल्फ्यूरिक अम्ल एवं धात्विक सल्फर इत्यादि अकार्बनिक सुधारक अपेक्षाकृत तेजी से कार्य करते हैं। सबसे ज्यादा उपयोग में लाया जाने वाला सुधारक जिप्सम, सस्ता और आसानी से उपलब्ध हो जाता है। जैविक सुधारक जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, फसल अवशेष आदि भी मिट्टी का सुधार कर सकते हैं लेकिन प्रक्रिया धीमी गति से काम करती है। किसी मिट्टी की जिप्सम जरूरत निकालने के लिए पहले उसका विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशत निकाला जाता है उसके बाद जिप्सम मिट्टी में मिला कर सिंचाई की जाती है। जिप्सम लगाने के बाद पानी तीन सप्ताह तक खड़ा रखना चाहिए।

निम्न गुणवत्ता सिंचाई जल क्या है ?

सिंचाई वाले जल जिनमें स्वीकार्य सांद्रता से अधिक लवण होते हैं वह खराब गुणवत्ता के होते हैं। ऐसे जल द्वारा सिंचाई करने पर लवण मिट्टी में इकट्ठा होने लगते हैं व धीरे–धीरे मिट्टी को भी खराब कर देते हैं, अगर सुधार न किये जाएं तो मिट्टी पूरी तरह से खराब हो सकती है। मिट्टी के खराब होने का समय पानी में लवणों के स्तर पर निर्भर करेगा। इससे मिट्टी में लवणता और क्षारीयता का निर्माण होता है और फसल वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्वों का विषाक्त सांद्रता तक निर्माण हो सकता है।

सिंचाई वाले जल की गुणवत्ता के मापदंड

सिंचाई के पानी की गुणवत्ता निम्नलिखित में से एक या एक से अधिक सूचकांकों द्वारा व्यक्त की जाती है। पानी में लवणता के खतरे को कुल जल में उपस्थित लवण सांद्रता से मापा जाता है जिसे वैद्युत चालकता (ई.सी., डेसीसीमन्स/मी.) के रूप में व्यक्त किया जाता है। पानी में क्षारीयता के

तालिका 1: सिंचाई जल की वैद्युत चालकता की व्याख्या (सामान्य वर्ष के लिए)

मृदा का प्रकार	वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर) की ऊपरी सीमा
मृतिका (क्ले)	1–3
दोमट	2–6
मध्यम बलूई	2.5–8.0
बलूई	3–10.0

खतरे को सोडियम अवशोषण अनुपात (एसएआर) व अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

पानी की वैद्युत चालकता (ईसी)

सिंचाई जल में वैद्युत चालकता का महत्वपूर्ण योगदान है, यदि वैद्युत चालकता 0–1.0 (डेसीसीमन्स प्रति मीटर) के बीच होती है तो उसे सिंचाई के लिए सुरक्षित रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है। लेकिन जब 1.0 से अधिक हो तो उसे सिंचाई के लिए विभिन्न मृदा प्रकार में सावधानीवूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए (तालिका 1)।

पानी का सोडियम अवषोषण अनुपात (एसएआर)

यदि मिट्टी में कैल्शियम और मैग्नीशियम के संबंध में सोडियम की अधिकता की वजह से रिसाव की समस्या हो रही है तो ज्यादा सोडियम अवशोशण अनुपात वाला पानी गंभीर पारगम्यता समस्याओं का कारण बन सकता है इससे मिट्टी में सोडियम का स्तर बढ़ जाता है। जब सोडियम आयनों के मिश्रित पानी के साथ सिंचाई की गई हो या कैल्शियम और मैग्नीशियम के संबंध में सोडियम की सापेक्ष उच्च सांद्रता हो तो मिट्टी की क्षारीयता की संभावना बढ़ जाती है (तालिका 2)।

पानी का अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी)

संभावित क्षारीयता के खतरे के संदर्भ में सिंचाई के पानी की उपयुक्तता का आंकलन करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण माप है। मिट्टी में क्षारीयता के निर्माण का खतरा सिंचाई के पानी में उपलब्ध कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट आयनों की मात्रा पर निर्भर करता है। अत्यधिक कार्बोनेट/बाइकार्बोनेट वाले भूजल कैल्शियम और मैग्नीशियम को अवच्छेपित कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप क्षारीय पानी की सांद्रता बढ़ जाती है। सोडियम कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट की अधिकता मिट्टी के भौतिक गुणों के लिए हानिकारक मानी जाती है क्योंकि यह मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के विघटन का कारण बनती है। इसके अलावा, सिंचाई

तालिका 2. सिंचाई जल की सोडियम अधिशोषण अनुपात (एसएआर) की व्याख्या (सामान्य वर्षा के लिए)

मृदा प्रकार	एसएआर की ऊपरी सीमा (मिली तुल्य/ली.$^{1/2}$)
मृतिका (क्ले)	10 से कम
दोमट	10–15
बलूई	20 से अधिक

तालिका 3. अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आर एससी) के अनुसार सिंचाई जल का वर्गीकरण (सामान्य वर्षा के लिए)

मृदा प्रकार	आरएससी की ऊपरी सीमा (मिली तुल्य/लीटर)
मृतिका (क्ले)	2.5–3.5
दोमट	3.5–7.5
बलूई	7.5–10.0

अ) क्षारीय पानी से मिट्टी को नुकसान

ब) क्षारीय पानी से फसल को नुकसान

अ) हरियाणा

ब) उत्तर प्रदेश

क्षारीय मृदाएँ

के पानी में ज्यादा क्षारीयता मिट्टी की संरचना को तितर–बितर करती है तथा मिट्टी में पानी को कम करती है (तालिका 3)।

सिंचाई के पानी का सुधार

सिंचाई के पानी का कोई प्रत्यक्ष सुधार नहीं है लेकिन खराब गुणवत्ता वाले पानी का उपयोग करते समय निम्न सावधानी बरतनी चाहिए :

- अधिक आरएससी वाले पानी को एक जिप्सम/पाइराइट की हौदी बनाकर सिंचाई के समय जिप्सम/पाइराइट के साथ उपचारित किया जाना चाहिए। यदि सिंचाई के पानी का आरएसी 2.5 मिली तुल्य/लीटर या उससे कम है, तो उपचार की आवश्यकता नहीं है। इसके आगे प्रत्येक मिली तुल्य/ली. आरएससी के लिए 86 किलोग्राम/हैक्टर जिप्सम (70 प्रतिशत शुद्ध) का उपयोग प्रत्येक सिंचाई (7 सेंमी.) के लिए किया जाना चाहिए। उपचार का एक अच्छा तरीका सिंचाई खाल या हौदी में जिप्सम (0.5–1 सेंमी छेद वाला) का एक बैग रखना है।

अगर सिंचाई का पानी खारा है तो समय–समय पर अच्छी गुणवत्ता वाले पानी का उपयोग करके अच्छी तरह से नमक की निकासी और निक्षलन होनी चाहिए। उपलब्धता के अनुसार अच्छी गुणवत्ता वाले नहर के पानी का उपयोग किया जाना चाहिए और बारिश के दौरान क्षेत्र में अधिक से अधिक वर्षा जल संग्रहित किया जाना चाहिए।

समाप्त

असीम दत्ता, अरिजीत बर्मन एवं बाबू लाल मीणा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: ashim.datta@icar.gov.in

मृदा एवं सिंचाई जल परीक्षण हेतु नमूने लेने की उपयुक्त विधियाँ

मृदा एवं जल परीक्षण–एक परिचय

मिट्टी का परीक्षण सभी फसलों में उर्वरकों की मात्रा को निश्चित करने के लिये एक महत्वपूर्ण आधार है। पौधों की पूर्ण वृद्धि एवं विकास के लिए 17 प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से कार्बन, नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन को छोड़कर बाकी 14 पोषक तत्व पौधे मृदा से सीधे प्राप्त करते हैं। एक ही भूमि स्थल पर लगातार फसल उगाने से मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा कम होने लगती है। इन पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए किसान अपनी मृदाओं में खाद व उर्वरक का प्रयोग करते हैं जिससे उनकी उपज तो बढ़ती है लेकिन कभी–कभी इन उर्वरकों का आवश्यकता से अधिक मात्रा में प्रयोग होने से मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके साथ–साथ पर्यावरण भी प्रदूषित होता है और अन्ततः मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका हानिकारक असर होता है। इसलिए आज के समय में यह महत्वपूर्ण है कि मृदा का परीक्षण करके ही सतुंलित, सही मात्रा और सही समय में खाद तथा उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे हमारा पर्यावरण स्वस्थ रहेगा और किसानों की आय में भी वृद्धि होगी।

मृदा परीक्षण का उद्देश्य

मृदा परीक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

- पोषक तत्वों की स्थिति, प्रतिक्रिया एवं लवणता का अनुमान लगाने के लिए।
- मिट्टी की उर्वराशक्ति का मूल्यांकन करने के लिए।
- मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का पता लगाने तदनुसार खाद व उर्वरक की सिफारिश करने के लिए।
- मृदा उर्वरता का मानचित्र तैयार करना और मृदा में पोषक तत्वों के आधार पर विभिन्न भागों में वर्गीकृत करना।

मिश्रित नमूने

मिट्टी का मिश्रित नमूना अलग–अलग मिट्टी की मात्रा का प्रतिनिधि है। मिश्रित मिट्टी का नमूना लेने का उद्देश्य कम समय और कम लागत के साथ इसका विश्लेषण एक भाग से तैयार किया जा सकता है। जिससे कम समय में अधिक नमूनों की जांच का जा सकती है और इसके साथ–साथ लागत भी कम लगती है।

मृदा में नमूने लेने की विधि उसके उद्देश्य पर निर्भर करती है। नमूने लेने के लिये कोई उचित मानक नहीं है। लवणग्रस्त भूमि के नमूने लेने के लिये कुछ महत्वपूर्ण विषयों को ध्यान में रखने की सिफारिश की जाती है। मृदा के नमूने ऐसी जगह से नहीं लें जहाँ फसलों की सामान्य वृद्धि के लिये असामान्य स्थिति हो जैसे:

- द्वार के पास, रास्ते के पास, मकानों के आस–पास, मेड़ आदि से नहीं लेनी चाहिए।
- खेत का वह क्षेत्र जहाँ कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक हो।
- लवणता–क्षारीयता वाली जगह से।

स्थानीय समस्याग्रस्त मृदाएं

स्थानीय समस्याएं निम्न प्रकार हैं:

- जहाँ की उपसतह बहुत कठोर हो जाती है वहाँ से मिट्टी नहीं लेनी चाहिए।
- लवणीय क्षेत्र
- क्षारीय क्षेत्र
- अधिक अम्लीय क्षेत्र
- खुली उपसतह
- कंकड़ युक्त मृदा

मृदा परीक्षण के कार्यक्रम:

मृदा परीक्षण के कार्यक्रम निम्नलिखित हैं:

- मिट्टी के नमूने संग्रह करना।
- मिट्टी के नमूने का रासायनिक विश्लेषण करना।
- अंशाकन और रासायनिक विश्लेषण के परिणाम की व्याख्या करना।
- सिफारिश करना।

मिट्टी के नमूने संग्रह करना: सर्वप्रथम मिट्टी के नमूने संग्रह करते समय हमें यह सर्वेक्षण कर लेना चाहिए कि ये ढलान, रंग, आकार तथा फसलोत्पादन के अनुसार है कि नहीं यदि है तो खेत को विभिन्न क्षेत्रों में बांट लें। इसके बाद प्रत्येक भाग में टेढ़े–मेढ़े चलते हुए 8–10 या 20–30 निशान लगायें और फिर निशान लगाने के उपरांत मिट्टी की ऊपरी सतह से घास–फूस साफ करके मिट्टी के नमूने एकत्रित करें और ये याद रखें कि फसल कतारों में बोई गई है तो मिट्टी का नमूना कतारों के बीच से लेना चाहिये। नमूना लेने के बाद किसान को पोलिथीन बैग या एक कागज पर निम्न बातें लिख देनी चाहिये:

- किसान का नाम, पता, दिनांक एवं खसरा संख्या/भूखण्ड संख्या

आवश्यक सामान: मिट्टी के नमूने लेने के लिए निम्नलिखित सामान की आवश्यकता पड़ती है:

सॉयल औगर, खुरपी, फावड़ा, पॉलीथीन बैग, रबड़, टैग, पैन आदि।

नमूने लेने की गहराई: मिट्टी के नमूने लेने के लिए दो विधियां हैं:

हम मिट्टी का नमूना ऑगर की सहायता से 0–15 सेंमी. गहराई से लेते हैं। लेकिन गांवों में किसानों के पास ऐसा ऑगर नहीं होता है इसलिये वहाँ पर खुरपी या फावड़े से मिट्टी का नमूना ले सकते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम खुरपी की मदद से 'वी' आकार का गड्ढा खोद लेते हैं, गड्ढ़े की गहराई 0–15

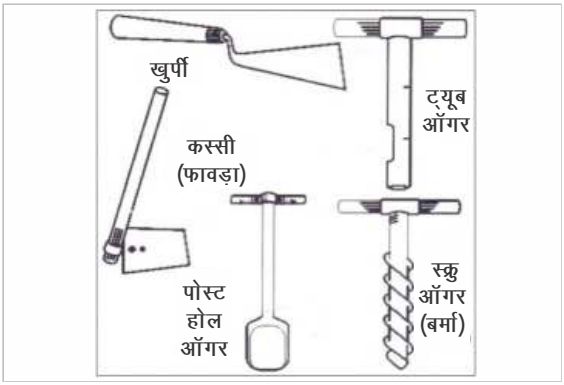

नमूने लेने के उपयुक्त औजार

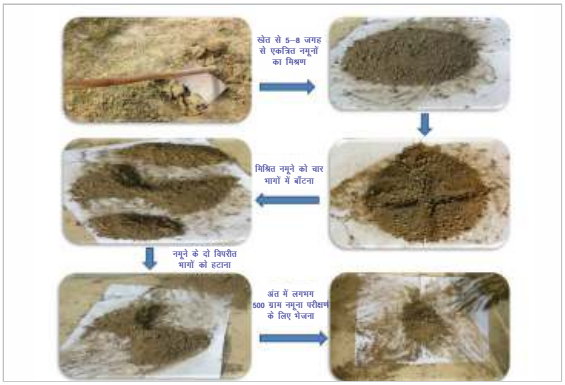

मिट्टी के नमूने एकत्रित कर परीक्षण के लिए तैयार करना

सेंमी. होनी चाहिए। फिर इसकी ऊपरी परत की मिट्टी को फेंक देते हैं तथा निचली सतह की मिट्टी को पॉलीथीन बैग में भर लेते हैं।

मृदा नमूने की तैयारी कैसे करे ?

मृदा के नमूने को तैयार करने के लिए निम्नलिखित क्रमबद्ध विधि अपनाते हैं:

सूखाना: मिट्टी को छाया वाले स्थान पर फैला कर अच्छी तरह से सूखा लेना चाहिए।

पिसाई: सूखाने के बाद मिट्टी की पिसाई की जाती है। पिसाई के लिए लकड़ी के हथौड़े से धीरे–धीरे पिसाई करनी चाहिए।

मिश्रण: पिसाई के बाद मिट्टी को अच्छी तरह से मिलाकर इकट्ठा कर दें।

विभाजन: मिश्रण के बाद पूरी मिट्टी को एक समान भाग में फैला दें, इसके बाद चार बराबर भागों में बांट दें। आमने–सामने वाले दो भाग हटा दें, तथा दो भाग को पुनः मिलाकर चार भागों में बांट दें। ये क्रिया तब तक दोहराते रहें जब तक कि मिट्टी की मात्रा लगभग 500 ग्राम न रह जाये।

छलनी से छानना: विभाजन के बाद मिट्टी को अच्छी तरह से छलनी से छान देवें। छलनी दो प्रकार की

उपयोग में ली जा सकती है:

- **0.2 मिमी की छलनी:** इससे उतनी ही मिट्टी छाननी चाहिए जितनी मिट्टी का कार्बनिक पदार्थ ज्ञात करना हो।
- **0.5 मिमी की छलनी:** इससे छानने वाली मिट्टी का पीएच, वैद्युत चालकता, नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश आदि तत्व ज्ञात करते हैं।

भंडारण:– छानने के बाद मिट्टी को पॉलीथीन बैग में औसतन 500 ग्राम भरकर रख दें। मिट्टी का भण्डारण करने के बाद हम निम्न तत्वों का परीक्षण करते हैं: पीएच, वैद्युत चालकता, कार्वनिक पदार्थ, नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, लौहा, मैंगनीज, जस्ता, ताँबा, मोल्ब्डेनम, बोरोन, क्लोराईड आदि।

मिट्टी के नमूने लेने का अनुक्रमिक रेखा–चित्र

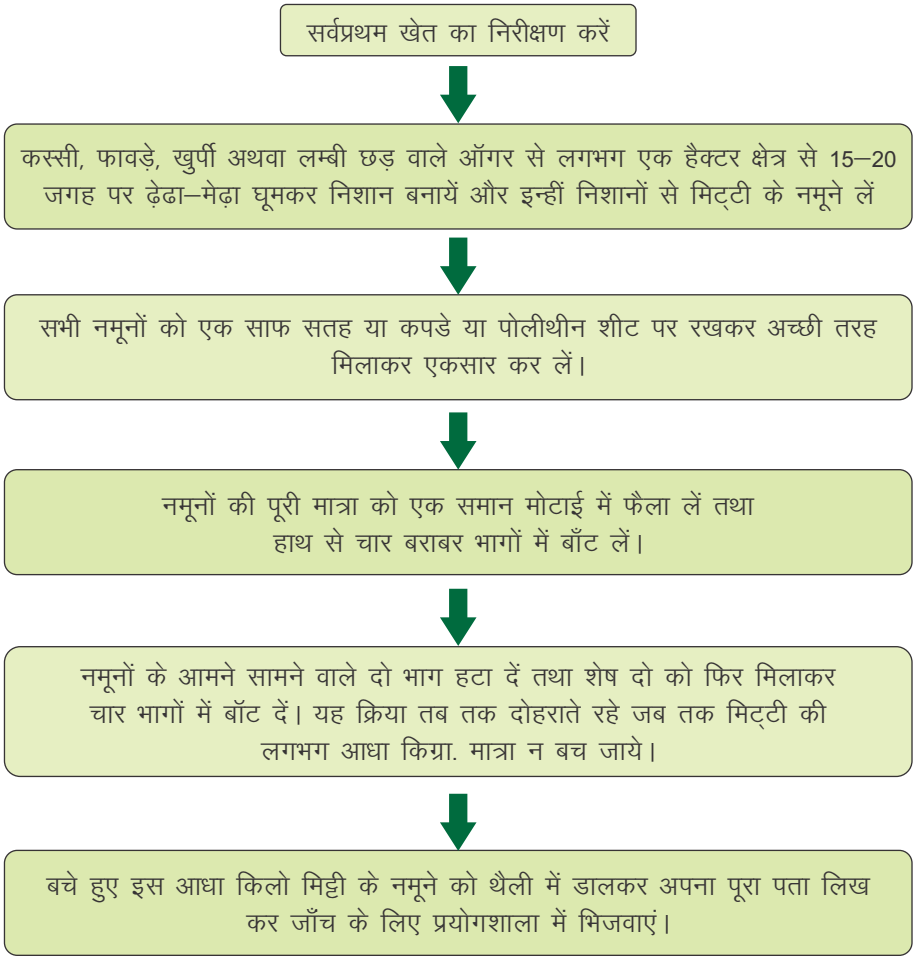

सिंचाई जल परीक्षण

मिट्टी में लवणता और क्षारीयता की समस्या खराब पानी द्वारा सिंचाई से आती है। यदि सिंचाई का पानी अच्छा नहीं है तो हमें संतुलित खाद व उर्वरक प्रयोग के बावजूद भी अच्छी पैदावार नहीं मिल पाती है। साथ ही साथ मिट्टी क्षारीय या लवणीय हो जाती है और मिट्टी पहले से ही क्षारीय या लवणीय है तो स्थिति और ज्यादा खराब हो सकती है जिसका सुधार करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार जैसे हम मिट्टी का परीक्षण करवाते हैं वैसे जल परीक्षण करवाना चाहिये। जल का नमूना प्लास्टिक की बोतल में लेना चाहिये। नमूना लेने से पहले बोतल को साफ पानी से धो लेना चाहिये।

यदि नहरी जल का नमूना लेना हो तो नहरी जल को खाल में 15–20 मिनट तक चलने दें, तत्पश्चात् पानी का नमूना लें। यदि नलकूप के पानी का नमूना लेना हो तो पहले नलकूप को 20–30 मिनट तक चलने के पश्चात् ही पानी का नमूना लें। पानी का नमूना कम से कम 100 मिली. लेना चाहिये। फिर बोतल को अच्छे तरीके से बन्द करके उस पर निम्न ब्यौरा लिखकर प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेजना चाहिए: किसान का नाम, पता, दिनांक, ट्यूबवैल नम्बर।

समाप्त

डार जाफर युसुफ, राम किशोर फगोडिया एवं देवेन्द्र सिंह बुंदेला
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: darjaffer6@gmail.com

अंतःस्थलीय लवणीय मछली उत्पादन की संभावनाएं

देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए अच्छी गुणवत्ता के भोजन की आवश्यकता में लगातार वृद्धि हो रही है। भोजन की गुणवत्ता में प्रोटीन एवं विटामीन का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए भोजन की बढ़ती मांग के साथ प्रोटीन की आवश्यकता भी लगातार बढ़ रही है। मछली में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसलिए प्रोटीन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मछली उत्पादन की मांग भी बढ़ रही है। खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार 2016 में मत्स्यपालन का वैश्विक उत्पादन 1710 लाख टन था, जो कुल मछली उत्पादन का 47 प्रतिशत है। इसके साथ ही यह भी पाया गया कि इस दौरान मछली की खपत सभी मांसाहारी स्रोतों के संयुक्त उपभोग से ज्यादा रही है।

दूसरी ओर वैश्विक रूप से कुल बंजर जमीन 1 से लेकर 6 अरब हैक्टर तक अनुमानित है। भारत देश में लवण प्रभावित भूमि 6.74 मिलियन हैक्टर है और लगभग 16 राज्य इससे प्रभावित हैं। इन लवण प्रभावित इलाकों में मछली पालन को अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन के रूप में जाना जाता है। लवण से प्रभावित मृदाओं को आमतौर पर लवणीय, क्षारीय और लवणीय–क्षारीय मृदाओं में विभाजित किया जाता है। लवणीय मृदा में उच्च वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर) एवं कम विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशतता होती है। क्षारीय मृदाओं का पीएच मान 8.2 से ऊपर होता है। जबकि लवणीय–क्षारीय मृदा में उच्च वैद्युत चालकता, उच्च विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशतता एवं पीएच मान आमतौर पर 8.2 से नीचे होता है। जलग्रस्त लवणीय मृदाओं व जल में मछली और झींगा उत्पादन की बहुत ज्यादा संभावनाएं हैं। इन संभावनाओं का उचित उपयोग करके किसानों की आय को बढ़ाया जा सकता है।

लवणीय जल स्त्रोत

अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन के लिए जमीन आधारित लवणीय भूजल का उपयोग किया जाता है। लवणीकरण का ज़्यादातर प्रभाव शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में देखने को मिलता है, जहाँ औसत वार्षिक वर्षा बहुत कम (250–500 मिमी) और वाष्पोत्सर्जन की दर बहुत ज्यादा होती है। शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में कुल वैश्विक क्षेत्र का लगभग एक–तिहाई हिस्सा शामिल है, जो जलवायु परिवर्तन और अनुचित जल प्रबंधन के कारण दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

अंतःस्थलीय लवणीय जल की आयनिक संरचना समुद्री जल की आयनिक संरचना से भिन्न होती है। सामान्यतया अंतःस्थलीय लवणीय जल में पोटेशियम की सांद्रता समुद्री जल की तुलना में कम होती है। अन्यथा अंतःस्थलीय लवणीय जल की आयनिक संरचना और सांद्रता समुद्री जल की आयनिक संरचना और सांद्रता के समान ही होती है। यद्यपि अंतःस्थलीय लवणीय जल की कुल आयनिक सांद्रता में पोटेशियम का योगदान बहुत कम है, लेकिन यह जलीय जीवों की सामान्य वृद्धि के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है। मछलियों में पोटेशियम परासरण नियमन, आयन–विनियमन और अम्ल/क्षार संतुलन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए अंतःस्थलीय लवणीय जल में मछली या झींगा उत्पादन के लिए हमें तालाब में पोटेशियम क्लोराइड के रूप में पोटेशियम बाहर से डालना पड़ता है।

लवणीय जल क्षेत्रों की वैश्विक और राष्ट्रीय स्थिति

आज के समय में शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में जहाँ बड़े पैमाने पर सिंचित कृषि की जाती है वहाँ मृदा लवणता का बढ़ना एक वैश्विक समस्या है। एक अनुमान के अनुसार 11000 लाख हैक्टर से भी ज्यादा वैश्विक भूमि लवणता और इससे संबंधित समस्याओं से प्रभावित हैं। विकसित देशों (आस्ट्रेलिया, इज़राइल और अमेरिका) और विकासशील (पाकिस्तान, चीन, थाईलैंड) के साथ–साथ भारत में भी बढ़ता लवणीय जल स्तर और इससे संबंधित पर्यावरणीय समस्याएं एक बहुत बड़ा मुद्दा है। लैम्बर्स (2003) के अनुसार वैश्विक स्तर पर 3800 लाख हैक्टर मृदा एवं भूजल लवणता के कारण कृषि उपयोग के लिए अयोग्य है। जबकि भारत सहित दक्षिण एशिया में यह आंकड़ा लगभग 520 लाख हैक्टर क्षेत्र है।

भारत में विशेष रूप से उत्तर–पश्चिम क्षेत्र में अंतःस्थलीय लवणीय जल की मात्रा और इसका क्षेत्र प्राकृतिक और मानवीय गतिविधियों के कारण बहुत तीव्र गति से बढ़ रहा है। देश को आने वाले समय में इसके गंभीर सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। लगभग 29.6 लाख हैक्टर (44 प्रतिशत) लवणीय मृदा है। इसका बहुत बड़ा भाग देश के सिंधु–गंगा मैदानी क्षेत्र के राज्यों पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में उपस्थित है। हरियाणा में यह मृदाएँ सामान्यतया जींद, हिसार, भिवानी, महेंद्रगढ़, सिरसा, रोहतक और झज्जर जिलों में पायी जाती है। पंजाब के दक्षिण–पश्चिमी जिले मुक्तसर, फजिल्का, बठींडा, फरीदकोट, फिरोजपुर और मानसा भी लवणीय भूजल से प्रभावित हैं। गुजरात में अहमदाबाद, अमरेली, बनासकांठा, भावनगर, जामनगर, कच्छ, राजकोट और सुरेन्द्रनगर जिलों में भी इसका व्यापक क्षेत्र पाया जाता है। पश्चिम महाराष्ट्र के पुणे, ठाणे, सांगली, सतारा और रायगढ़ जिलों में भी इस तरह की भूमि मुख्य रूप से पायी जाती है।

तालिका 1. जल गुणवत्ता मानक और मानक मूल्य

पैरामीटर	मानक मूल्य
घुलनशील ऑक्सीजन	4.0 मिलीग्राम/लीटर से अधिक
तापमान	प्रजाति निर्भर
पीएच मान	7.5–8.5
लवणता (पीपीटी)	मीठा जलः 0.5 से कम खारा जलः 0.5–30 समुद्री लवणीय जलः 30–40 अनुकूलतम/उपयुक्तः 15–25
घुलनशील कार्बन डाइऑक्साइड	10 मिलीग्राम/लीटर से कम
अमोनिया	0–0.5 मिलीग्राम/लीटर
नाइट्राइट	1 मिलीग्राम/लीटर से कम
कठोरता	40–400 मिलीग्राम/लीटर
क्षारीयता	75–300 मिलीग्राम/लीटर
हाइड्रोजन सल्फ़ाइड	0 मिलीग्राम/लीटर
जैविक ऑक्सीजन मांग (बीओडी)	50 मिलीग्राम/लीटर से कम

मछली उत्पादन के लिए जल गुणवत्ता मानक

मछली और झींगा उत्पादन में जल की रासायनिक संरचना का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अंतःस्थलीय लवणीय जल में मछली और झींगा उत्पादन के लिए जल की रासायनिक संरचना को उनके लिए उपयुक्त तरीकों से समायोजित किया जाना आवश्यक है। मछली और झींगा उत्पादन के लिए उपयुक्त पानी के विभिन्न भौतिक और रासायनिक मानकों को तालिका 1 में दर्शाया गया है।

अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन लिए उपयुक्त विभिन्न प्रजातियाँ

कम लवणता वाले अंतःस्थलीय लवणीय जल क्षेत्रों में मछली और झींगा का उत्पादन चीन, थाईलैंड, वियतनाम, इक्वाडोर, ब्राजील, मेक्सिको, अमेरिका, इज़राइल, आस्ट्रेलिया और दुनिया के अन्य कई देशों में मछली पालन की सामान्य प्रथा है। अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्य–पालन के लिए मछली और झींगा की विभिन्न प्रजातियों का विवरण तालिका 2 में दर्शाया गया है। बारामुंडी (*लेट्स कैलकारिफ़र*) जोकि ताजा पानी (मीठा पानी) से 55 पीपीटी तक के लवणीय जल को सहन कर सकती है, को आस्ट्रेलिया और भारत दोनों देशों में अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन के लिए सबसे उपयुक्त प्रजाति के रूप में पहचाना गया है।

आजकल अंतःस्थलीय लवणीय जल क्षेत्रों में 1–15 पीपीटी तक के लवणीय भूजल के उपयोग से समुद्री झींगा का उत्पादन करना पूरी दुनिया में बहुत आम बात है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका (फ्लोरिडा, अलबामा, टैक्सास, एरिजोना राज्यों) और अन्य देशों में भी आम हो गया है। भारत के हरियाणा में झींगा उत्पादन 400 हैक्टर क्षेत्र में हो रहा है और यहाँ किसान इसके उत्पादन को एक अवसर के रूप में सराहनीय दर से अपना रहे हैं। पैसिफिक सफेद झींगा एवं *लिटोपनेयस वनामे* लवणता की एक विस्तृत सीमा (कम से बहुत अधिक लवणता) को सहन कर सकती है इसलिए कुछ किसान और वैज्ञानिक निम्न लवणता वातावरण में पैसिफिक सफेद झींगा उत्पादन के प्रयासों पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं और इस पर अनुसंधान कर रहे हैं। पिछले दस वर्षों में पैसिफिक सफेद झींगा प्रजाति की कम लवणता जल में उत्पादन से संबंधित समझ में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। विभिन्न लवणीय जल में इसकी अनुकूलता और सहनशीलता में श्रेष्ठता के कारण, *लिटोपनेयस* वनामेई का पालन कई देशों के तटीय एवं अंतःस्थलीय लवणीय जल क्षेत्रों में तेजी से बढ़ता हुआ एक उद्योग है (तालिका 2)।

तालिका 2. विश्व स्तर पर अंतःस्थलीय लवणीय जल क्षेत्रों के लिए मछली की प्रजातियाँ

देश	मछली की प्रजातियां
अमेरिका	तिलापिया, रेड ड्रम, सी ब्रीम, ईल्स और चैनल कैटफ़िश, पैसिफिक सफेद झींगा, लिटोपनेयस वनामेई
चीन	पैसिफिक सफेद झींगा, *लिटोपनेयस वनामे*
भारत	बारामुंडी (*लेट्स कैलकारिफ़र*), मिल्क फिश (*चनोस चनोस*), पोम्पानो, कोबिया, गिफ्ट तिलापिया, रेड तिलापिया, पंगास, अमूर कार्प, पर्ल स्पॉट (*एटरोपलस सुराटेन्सिस*), मुघिल सीफालस, टाइगर झींगा (*पीनियस मोनोडोन*), पैसिफिक सफेद झींगा, *लिटोपनेयस वनामे*
थाईलैंड	पैसिफिक सफेद झींगा, *लिटोपनेयस वनामे*
वियतनाम	पैसिफिक सफेद झींगा, *लिटोपनेयस वनामे*
ब्राज़ील	पैसिफिक सफेद झींगा, *लिटोपनेयस वनामे*
आस्ट्रेलिया	बारामुंडी (*लेट्स कैलकारिफ़र*), टॉमी रफ (*एरिपिस ज्यूजयानूस*), सिल्वर पर्च (*बीड़ियानस बीड़ियानस*), *पगरस ओरटस*

अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन एवं उपसतही जल निकास प्रौद्योगिकी का एकीकरण

मिस्र एवं अमेरिका में सिंचाई क्षेत्र के क्रमशः 75–80 प्रतिशत और 25–30 प्रतिशत क्षेत्र में उपसतही जल निकास परियोजनाएं लगाई हुई हैं। 1980 के दशक के दौरान भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा किए गए कुछ उपसतही जल निकास पायलट परियोजनाओं के कारण धीरे–धीरे हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक में बड़े पैमाने पर अभियांत्रिक रूप से स्थापित जल निकासी परियोजनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। इन अभियांत्रिक रूप से स्थापित जल निकास परियोजनाओं का निर्माण करना एवं सुचारु रूप से उनका संचालन करना बहुत महंगा साबित होता है। इन अभियांत्रिकी आधारित जल निकास परियोजनाओं के डिजाइन में अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन का समावेश करके इन परियोजनाओं से निकलने वाले लवणीय जल का लाभकारी उपयोग करके परियोजना के प्रारम्भ में होने वाले निवेश की आंशिक रूप से वापसी की जा सकती है। इन उपसतही जल निकास परियोजनाओं के साथ मछली एवं झींगा की लवण सहिष्णु प्रजातियों का पालन करके किसानों की आय बढ़ाने के बहुत ज्यादा अवसर हैं। अतः इन परियोजनाओं के साथ अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन का एकीकरण करके, पर्यावरण को प्रभावित किए बिना अतिरिक्त वित्तीय लाभ प्राप्त करने के लिए मानकीकृत करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

देश में जहाँ लवणता से प्रभावित बड़े अंतःस्थलीय लवणीय क्षेत्र उपलब्ध हैं। इन जगहों पर मछली और झींगा के पालन एवं उत्पादन के बहुत ज्यादा अवसर हैं। इन इलाकों में मछली और झींगा पालन से संबंधित क्षेत्र विशिष्ट तकनीकियों का मानकीकृत करना और कुशल बाजार श्रृंखला प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है। साथ ही हमें अंतःस्थलीय लवणीय मत्स्यपालन के सतत् विकास के लिए मत्स्यपालन से संबन्धित बाधाओं जैसे एंटीबायोटिक्स, अपशिष्ट निर्वहन प्रणाली आदि पर भी काम करने की आवश्यकता है।

समाप्त

⌘ पुरानी गलतियां आपकी पहचान नहीं होतीं,
वे तो आपको सीख देने के लिए होती हैं। ⌘

बी॰एल॰ मीणा, आर॰एल॰ मीणा, आर॰के॰ फगोडिया, एम॰जे॰ कलेढोणकर, ए॰ कुमार एवं पी॰ कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: blmeena2008@gmail.com

मृदा एवं फसल प्रबंधन से करें जिंक जैव प्रबलीकृत अनाज उत्पादन

मानव–जीवन के लिए आवश्यक सभी वांछित पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए कृषि ही प्राथमिक स्रोत है। किन्तु विगत वर्षों में कृषि का प्रमुख केन्द्र बिन्दु केवल उत्पादन ही रहा है जिसमें उत्पादों के पोषण के संबंध एवं स्वास्थ्यवर्धक गुणवत्ता की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। हरित–क्रांति के परिणामस्वरूप खाद्य फसलों की विविधता में कमी के कारण अनेक सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो गई है। अभी भी विकासशील देशों में जिंक की कमी एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य समस्या है। अनाज की आधुनिक किस्मों में जिंक की मात्रा बहुत कम होती है जो मानव की दैनिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। विश्व स्तर पर अनाज की खेती वाली क्षारीय मिट्टी में 50 प्रतिशत तक जिंक की कमी पायी जाती है।

जैव प्रबलीकरण (बायोफोर्टिफिकेशन) क्या है

बायोफोर्टिकेशन प्रक्रिया द्वारा, पारंपरिक प्रजनन, आनुवंशिक इंजीनियरिंग और सूक्ष्म पोषक तत्वों वाले उर्वरकों का उपयोग करके मुख्य खाद्य पदार्थों के पोषक मूल्य में सुधार करना है। यह तकनीकी, जनसंख्या के एक बड़े समूह में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को कम करने में मुख्य योगदान प्रदान कर सकती है इस तकनीक से किसी विशेष सूक्ष्म तत्व की मात्रा को फसल के दाने में बढ़ा सकते हैं।

हालांकि आनुवंशिक इंजीनियरिंग और पौधों के प्रजनन की प्रक्रियाओं की कम दक्षता, उच्च लागत और सीमित सफलता के कारण अभी तक मानव पोषण में जिंक की कमी की गंभीर समस्या का उचित समाधान नहीं हो पाया। अनाज की मुख्य खाद्य फसलों के खाद्य भागों में उर्वरकों के माध्यम से जिंक घनत्व में सुधार करने की एक टिकाऊ और कम लागत वाली तकनीक है। जिसमें कृषि वैज्ञानिक मृदा एवं फसल प्रबधंन के माध्यम से मिट्टी, बीज या पत्तियों पर अनुप्रयोग करके मिट्टी में पौधों की जड़ों या पौधे की पत्तियों में जिंक की उपलब्धता को बढ़ाते हैं। इसके अलावा, मृदा एवं फसल प्रबंधन से जैविक प्रबलीकरण (बायोफोर्टिफिकेशन) पौधों की वृद्वि, उपज को बढ़ाकर और जिंक समृद्ध बीज बनाने के साथ ही पौधों में रोग प्रतिरोधकता और तनाव सहिष्णुता के लिए भी महत्वपूर्ण है।

जैव प्रबलीकरण की आवश्यकता

जैव प्रबलीकरण के पीछे कई महत्वपूर्ण तथ्य हैं जो मानव उपभोग के लिए अनाज की फसलों में जिंक की मात्रा बढ़ाने के महत्व को बताते हैं जिनकी चर्चा निम्न बिदुंओं के तहत की जा रही है, जो कि मानव पहलू से शुरू होकर पौधे और मिट्टी के कारकों के साथ है।

जिंक की कमी का मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर प्रभाव

जिंक की कमी का सीधा संबध मानव के खाद्य एवं पोषण सुरक्षा से जुड़ा है क्योंकि जिंक फसल उत्पादन के साथ–साथ फसलों की गुणवत्ता बढाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विश्व स्वारथ्य सगंठन के अनुसार मानव स्वास्थ्य को महज बीमारी से न जोडकर सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बेहतरी

के रूप में देखा जाना चाहिए। स्वस्थ जीवन के लिए लोगों को पर्याप्त और उससे भी कहीं ज्यादा संतुलित्त मात्रा में कार्बोहाइड्रेट्स, लिपिड्स, वसीय अम्ल, प्रोटीन, विटामिन और सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी भी तत्त्व की कमी अथवा असंतुलन हमारा स्वास्थ्य खराब कर सकता है। हरित क्रांति के फलस्वरूप जहाँ एक और सीमित कृषि क्षेत्र से धान एवं गेहूँ जैसी अनाजी फसलों का उत्पादन बढा, वहीं दूसरी ओर मृदा से अधिक मात्रा में पोषक तत्वों का खनन होने से मृदा की उर्वरता पर बुरा प्रभाव पडा जिसके परिणामस्वरूप अधिक उपज देने वाली अनाज फसलों, जिनमें आनुवंशिक रूप से सूक्ष्म तत्वों की मात्रा कम होती है, सूक्ष्म तत्वों की कमी वाली मृदा में उगाने से इनमें उक्त तत्वों की मात्रा और कम हो जाती है।

दैनिक कैलोरी में अनाज का योगदान

जिंक की कमी अक्सर अनाज आधारित खाद्य पदार्थों की एक बड़ी खपत के कारण होती है। पशु आधारित खाद्य पदार्थों की तुलना में, अनाज आधारित खाद्य पदार्थों में बहुत कम जिंक की मात्रा होती हैं। हालांकि विकासशील देशों में अधिकांश लोग, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, व्यापक गरीबी, उच्च खाद्य कीमतों और सामाजिक प्राथमिकताओं के कारण ऊर्जा और खनिजों के प्रमुख स्रोत के रूप में अनाज आधारित खाद्य पदार्थों पर निर्भर रहते हैं।

उक्त कारणों से विश्व में कुपोषण फैल रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, अन्य जोखिम कारकों जैसे शराब, तम्बाकू, एड्स आदि की तुलना में अब कुपोषण सबसे बड़ा ऐसा कारक है जिससे मानव मृत्यु सबसे अधिक (प्रति वर्ष 3 करोड़ से भी अधिक) होती है।

भारतीय परिदृश्य

भारत देश ने खाद्यान्न सुरक्षा प्राप्त कर ली है और अब देश से खाद्यान्नों का निर्यात होता है। इसमें राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली के विभिन्न संस्थानों द्वारा विकसित अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों का बहुत बड़ा योगदान है। यद्यपि भारत ने खाद्य सुरक्षा तो प्राप्त कर ली है किन्तु पोषण सुरक्षा अभी तक प्राप्त नहीं की है जिसके परिणामस्वरूप कुपोषण द्वारा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव आसानी से देखे जा सकते हैं। कुपोषण को 'सुप्त भूख' भी कहा जा सकता है। अफ्रीकी देशों की संयुक्त रूप से जितनी आबादी है, उससे अधिक कुपोषित व्यक्ति भारत में है। भारतीय जनसंख्या में मुख्य रूप से तीन सूक्ष्म पोषक तत्वों (आयरन, जिंक एवं विटामिन 'ए') की कमी विशेष रूप से व्याप्त है (तालिका 1)। इसके परिणामस्वरूप भारत सरकार की योजना में एक बहुत बड़ा बदलाव हुआ है और वह है, देश के नागरिकों के लिए पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना। कुपोषण से लड़ने के लिए कई रणनीतियों का सुझाव दिया गया है जिनमें पूरक आहार का वितरण, प्रबलीकरण योजनाएं तथा संतुलित आहार उपलब्ध कराना सम्मिलित है। दुर्भाग्यवश ऐसी योजनाओं को बहुत अधिक सफलता नहीं मिली है क्योंकि एक तो ऐसी योजनाओं में बहुत अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है और साथ ही एक सुनियोजित संगठनात्मक ढाँचे की भी आवश्यकता होती है। इन दोनों की ही भारत जैसे विकासशील देश में कमी है, दूसरा, ये किसानों एवं उपभोक्ताओं पर निर्भर करती है। अधिक पोषक तत्वों से युक्त फसलों की नई श्रेष्ठ किस्में तैयार करना एक अपेक्षाकृत नया विकल्प है जिससे उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों लाभान्वित होंगे। यह रणनीति जिसे 'जैविक प्रबलीकरण' कहा जाता है, स्रोत को लक्षित कर, समस्या का निवारण करती है। 'हार्वेस्ट प्लस' के सहयोग से हमारे देश के अनेक अनुसंधान संस्थानों में फसल की भरपूर पोषक तत्वों वाली किस्में तैयार करने का कार्य आरम्भ हो चुका है।

तालिका 1. भारत में सूक्ष्म पोषक तत्व संबंधी कुपोषण एवं उसके परिणाम

कमी	प्रभावित भारतीय जनसंख्या	सर्वाधिक प्रभावित	वर्ग परिणाम
आयरन	5 वर्ष से कम आयु के 70 प्रतिशत बच्चे और 55 प्रतिशत महिलाएं	सभी किन्तु विशेष रूप से महिलाएं एवं बच्चे	मंदबुद्धि, प्रसव के समय समस्याएं, शारीरिक एवं प्रजनन संबंधी क्षमता कम होना
विटामिन 'ए'	4 वर्ष से कम आयु के 62 प्रतिशत बच्चे	बच्चे एवं गर्भवती महिलाएं	माँ–बच्चे की मृत्यु में बढ़ोत्तरी, अंधता
जिंक	5 वर्ष से कम आयु के 44 प्रतिशत बच्चे	महिलाएं एवं बच्चे	संक्रामक रोग अधिक लगना, बच्चों में वृद्धि कम होना, गर्भावस्था एवं प्रसव के समय समस्याएं, नवजात बच्चे का वजन कम रहना

जैविक प्रबलीकरण हेतु लक्षित फसलें

भारत में जिंक के जैविक प्रबलीकरण हेतु हार्वेस्ट प्लस के अन्तर्गत धान, गेहूँ एवं बाजरा की पहचान की है (तालिका 2)। इन फसलों में आयरन एवं जिंक की मात्राओं में धनात्मक सहसंबंध है और इसलिए एक पोषक तत्व की बढ़ोत्तरी होने पर दूसरे पोषक तत्व में भी सुधार होता है। इन फसलों का चयन करने के पीछे अनेक महत्वपूर्ण कारण है, जैसे भारत में धान, आहार के रूप में उपयोग की जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण फसल है। निर्धन व्यक्तियों की 50 से 80 प्रतिशत ऊर्जा इसी से उपलब्ध होती है। विगत तीन दशकों में चावल का आहार करने वाले व्यक्तियों में 70 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है तथा प्रति व्यक्ति चावल का उपभोग 214 किग्रा./वर्ष है। चूँकि चावल का भारत में दैनिक उपभोग काफी अधिक है इसलिए जिंक के साथ जैविक प्रबलीकरण करने के लिए यह एक आदर्श आहार फसल है। चावल के बाद भारत में गेहूँ का सबसे अधिक उपभोग होता है। उत्तर एवं पश्चिमी भारत में, जहाँ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी विस्तृत रूप से पायी जाती है, जैविक प्रबलीकरण हेतु यह एक उत्तम आहार फसल है।

आजकल हार्वेस्ट प्लस, एक निजी कम्पनी, निर्मल सीड्स के सहयोग से कार्य कर रहा है ताकि किसानों एवं उपभोक्ताओं को इन पोषक तत्वों से परिपूर्ण फसल का लाभ मिल सके। उच्च जिंक युक्त धान एवं उच्च जिंक युक्त गेहूँ की किस्मों (तालिका 3) को भारत में सन् 2013 में जारी किया गया है।

मृदा और पर्णीय उपयोग, जिससे क्षारीय मृदाओं में जिंक की कमी के लक्षणों को दूर करने के साथ–साथ अनाज वाली फसलों के दानों में जिंक की मात्रा को भी बढ़ा सकते हैं जैसा चित्र में दिखाया गया है।

तालिका 2. भारत में जारी किए जाने के लिए हार्वेस्ट प्लस द्वारा लक्षित फसलें एवं पोषक तत्व

फसल	भारत में औसत खपत (ग्राम/व्यक्ति/दिन)	पोषक तत्व	अंश (मिग्रा./किग्रा.) आधार	स्तर	लक्ष्य	जारी करने का वर्ष	जैव प्रबलीकरण का आंकलित योगदान
धान	400	जिंक	16		24	2013	जिंक की दैनिक औसत आवश्यकता का 40 प्रतिशत
गेहूँ	350	जिंक	25		33	2013	जिंक की दैनिक औसत आवश्यकता का 40 प्रतिशत
बाजरा	300	लौहा	47		77	2012	लौहे की दैनिक औसत आवश्यकता का 30 प्रतिशत

तालिका 3. अनाज वाली फसलों में जिंक की कमी को दूर करने के लिए कुछ कृषि उपाय

जिंक का मृदा एवं पर्णीय उपयोग	जिंक का मृदा में उपयोग	पर्णीय छिड़काव
चपाती गेहूँ में मिट्टी एवं पर्णीय छिड़काव का एक साथ अनुप्रयोग करने से अनाज में जिंक की मात्रा में 3.5 गुना तक वृद्धि हुई।	मृदा में 25–35 किग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर के अनुप्रयोग से फसल की उत्पादकता में सार्थक बढ़ोतरी दर्ज की गयी।	बाजरे एवं चावल के अनाज में दो बार 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव, मृदा अनुप्रयोग, 20 किग्रा. जिंक/हैक्टर की तुलना में दो से तीन गुणा अधिक पाया गया।

जिंक उर्वरकों के लिए फसल की प्रतिक्रिया

जिंक उर्वरकों के उपयोग के प्रति फसल की प्रतिक्रिया लगभग सभी मिट्टी और कृषि जलवायु क्षेत्रों में देखी गयी है। फसल की प्रतिक्रिया की सीमा उस मिट्टी में जिंक की स्थिति पर निर्भर करती है। मिट्टी में जिंक की कमी जितनी अधिक होगी, उतनी ही जिंक अनुप्रयोग के प्रति फसल की प्रतिक्रिया होगी। फसल की पैदावार पर जिंक का प्रभाव अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है। क्षारीय मृदाओं में जिंक की कमी व्यापक स्तर पर है, इसलिए जिंक के प्रयोग का प्रभाव सिंचाई और वर्षा आधारित क्षेत्रों की अधिकतर फसलों की पैदावार में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है (तालिका 4)।

फसलों में जिंक की कमी के कारण

- **कार्बनिक खादः** कम खादों के अनुप्रयोग से जिंक का चिलेटीकरण या जैव जटिल होना रूक जाना।
- जिंक–अक्षम फसलों की किस्में को उगाना
- **मिट्टी का जलक्रान्त एवं बाढ़ से ग्रस्त होनाः** धान के खेत में लगातार पानी भरने से मृदा की ऑक्सी–अवकरण क्षमता कम हो जाती है।
- **मिट्टी में जिंक की कमीः** मृदा पीएच 7.0 से अधिक होने पर जिंक के हाइड्रोक्साइड और ऑक्साइड का बनना।
- **मिट्टी का क्षारीय होनाः** क्षारीय पानी के प्रयोग से जिंक का विभिन्न अघुलनशील हाइड्रॉक्साइडों में अवक्षेपण होना। मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट की अधिकता से जिंक का अधिशोषण होता है।
- **फॉस्फेट का ज्यादा अनुप्रयोगः** मृदा में फॉस्फोरस, मैंगनीज एवं लौहे की अधिक उपलब्धता होना।

तालिका 4. क्षेत्रीय प्रयोगों में जिंक के लिए फसल की अनुक्रिया

फसल	क्षेत्रीय प्रयोग (संख्या)	जिंक की प्रतिक्रिया	
		पैदावार में बढ़ोतरी (किग्रा./हैक्टर)	प्रतिशत बढ़ोतरी
चना	15	360	24
मूंगफली	83	320	18
बाजरा	236	190	13
ज्वार	83	360	41
रागी	47	350	14

तालिका 5. भारत में फसलो के लिए जिंक उर्वरक की सिफारिशें

फसल / फसल प्रणाली	जिंक की सिफारिशें
धान एवं धान आधारित फसल चक्र में जिंक का प्रयोग	जिंक की कमी वाली मृदाओं में उगाई जाने वाली धान की फसल में 2–3 वर्ष के अन्तराल पर 5 किग्रा. जिंक (25 किग्रा. जिंक सल्फेट) प्रति हैक्टर के आधार पर उर्वरक के रूप में प्रयोग करना चाहिए। जिंक युक्त उर्वरक का प्रयोग फॉस्फोरस दिये जाने के दो दिन बाद करें। क्षारीय मृदाओं में धान–गेहूँ फसल प्रणाली में धान की फसल में 10 किग्रा. जिंक (50 किग्रा. जिंक सल्फेट) प्रति हैक्टर की दर से दो वर्ष के अन्तराल पर प्रयोग करना चाहिए। यदि मिट्टी परीक्षण में जिंक की कमी नहीं पायी गयी है पर पौधों की वृद्धि अवस्था में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का घोल बनाकर 2–3 बार पत्तियों पर छिड़काव करें।
धान–गेहूँ फसल चक्र में जिंक का प्रयोग	चूना पत्थर युक्त मृदाओं में धान–गेहूँ फसल चक्र में, धान की फसल में 10 किग्रा. जिंक (50 किग्रा. जिंक सल्फेट) प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के समय में या 5 किग्रा. जिंक (25 किग्रा. जिंक सल्फेट) + 5 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से देना चाहिए। यह मात्रा दो फसल चक्रों के लिए पर्याप्त होती है। रेतीली मृदाओं में धान की नर्सरी में जिंक की अत्यधिक कमी होने पर नर्सरी में 8 किग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर के हिसाब से डालना चाहिए।
गेहूँ में जिंक प्रयोग	उत्तर भारत की रेतीली मृदाओं में गेहूँ के पूर्व फसल में यदि जिंक का का प्रयोग न किया गया हो तो गेंहूँ की फसल में 5.0 किग्रा. जिंक (25.0 किग्रा. जिंक सल्फेट) प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए। यह मात्रा गेंहूँ की दो से तीन फसलों के लिये पर्याप्त होगी।
बाजरा–गेहूँ फसल चक्र में जिंक का प्रयोग	बाजरा–गेहूँ फसल चक्र, ज्यादातर मैदानी क्षेत्रों की कार्बनिक पदार्थ की कम मात्रा वाली उदासीन रेतीली दोमट मृदाओं में 2.5 किग्रा जिंक प्रति हैक्टर (12.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट) + 5 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से फसल चक्र की पहली फसल बाजरा में 3 वर्ष के अन्तराल पर देना चाहिए।
मक्का एवं मक्का आधारित फसल चक्र में जिंक का प्रयोग	हल्की संरचनाओं वाली मृदाओं में मक्का की प्रत्येक फसल में 2.5 किग्रा. जिंक (12.5 किग्रा. जिंक सल्फेट) प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के समय फसल प्रयोग करना चाहिए अथवा वृद्धि अवस्था में यदि पौधों की पत्तियों पर जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 1.5 किग्रा जिंक सल्फेट व 1.0 किग्रा. कैल्शियम हाइड्रॉक्साइड प्रति हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोल कर पर्णीय छिड़काव करें।

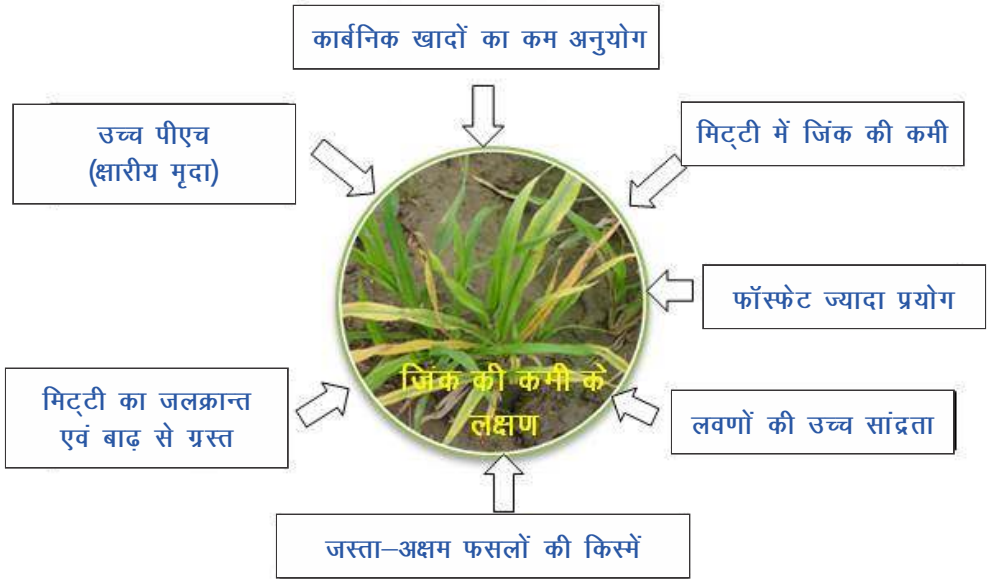

फसलों में जिंक की कमी के विभिन्न कारण

नमक की उच्च सांद्रता (लवणता): लवणीय अभिक्रिया के साथ रेतीली मृदाओं में जिंक की कमी सहज ही होती है।

निष्कर्ष

- क्षारीय मृदाओं में जिंक की कमी को सुधारने से फसलों की पैदावार, किसानों की आय और फसल की पोषण गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ मानव पोषण में भी सुधार होगा ।
- फसल की उच्च पैदावार के लिए जिंक सहित सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ संतुलित उर्वरकों का उपयोग करना आवश्यक है।
- जिंक उर्वरकों के संतुलित उपयोग करने के लिए किसान, विस्तार कार्यकर्ताओं एवं नजदीकी कृषि विभाग से संपर्क कर सकता है।

समाप्त

श्रेष्ठ व्यक्ति बोलने में जहाँ संयमी होता है
वहीं वह अपने कार्यों में अग्रणी होता है।

अंकुर राणा, पूनम जसरोटिया, प्रेम लाल कश्यप एवं सुधीर कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: poonamjasrotia@gmail.com

फसल सुरक्षा में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन का महत्त्व

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन एक ऐसी प्रणाली है जो पर्यावरण के संदर्भ में सभी उपयुक्त तकनीकों और विधियों को यथासंभव संगत तरीके से उपयोग करती है। यह कीट प्रजातियों की जनसंख्या, गतिशीलता तथा कीटों की आबादी के विकास को क्षति के आर्थिक स्तर से नीचे बनाये रखती है। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन में फसलों और कीटों दोनों को गतिशील पारिस्थितिकी तंत्र के हिस्से के रूप में देखा जाता है। यह यांत्रिक, व्यवहारिक, जैविक व रासायनिक विधियों को सम्मिलित कर कीटों से होने वाली क्षति का प्रबंधन करने की एक स्थायी प्रणाली है। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन अवधारणा एक ऐसे सिद्धांत पर आधारित है जिसमें सभी कीटों को खत्म करना जरूरी नहीं है, बल्कि उनकी जनसंख्या को एक क्षति के स्तर से नीचे बनाये रखना है जिससे महत्वपूर्ण कीटों का नुकसान नहीं होता है। यह एक स्वस्थ फसल के विकास पर बल देता है जिससे कृषि–पारिस्थितिकी प्रणालियों का कम से कम क्षरण होता है एवं प्राकृतिक कीट नियंत्रण तंत्र को बढ़ावा मिलता है। फसल कीट प्रबंधन के लिए एकीकृत रणनीति में कीटों की घटनाओं को कम करने के लिए जैविक नियंत्रण को अत्यधिक प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें ऐसे कीटों का प्रयोग किया जाता है जो अन्य हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रु होते हैं जो उनको खाकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं तथा उनसे होने वाली क्षति को आर्थिक रूप से निम्न स्तर पर बनाये रखते हैं। कीटों के दमन को कम करने के लिए कीट प्रतिरोधी किस्मों को उगाने पर बल दिया जाता है। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन में रासायनिक का कम से कम उपयोग करने की सलाह दी जाती है। इसके अतिरिक्त जब कीटों से होने वाली क्षति आर्थिक स्तर से उपर पहुँच जाती है तब उन कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है जो उचित और संशोधित हो अन्यथा यह बहुत हानिकारक होते हैं।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के उद्देश्य

- कीटों के उन्मूलन के बजाय कीटों की संख्या को हानिकारक स्तर से नीचे रखना।
- जैव विविधता सहित पर्यावरण संरक्षण करना।
- छोटे किसानों के लिए पौध संरक्षण को व्यवहार्य, सुरक्षित और किफायती बनाना।
- सिंथेटिक कीटनाशकों के उपयोग को कम करना।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के लाभ

- यह कीटों के नियंत्रण की कुशल और कम लागत वाली विधि है।
- प्रकृति के संतुलन को हानि नहीं पहुँचाती है।
- प्रतिरोध के विकास में विलम्ब करती है।
- कीटनाशकों के अवशेषों के खतरे को कम करती है।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के सिद्धांत

- प्रमुख कीटों और फायदेमंद जीवों (मित्र कीट) की पहचान करना।
- कृषि–परिस्तिथिकी प्रबंधन इकाई को परिभाषित करना।
- प्रबंधन रणनीति का विकास करना।
- आर्थिक स्तर (हानि और जोखिम) की स्थापना करना।
- तकनीकों के विकास का मूल्यांकन करना।
- कीट मॉडल के विवरण की भविष्यवाणी विकसित करना।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन कैसे काम करता है?

आई.पी.एम एकल कीट नियंत्रण पद्धति नहीं है, बल्कि, कीट प्रबंधन मूल्यांकन, निर्णयों एवं नियंत्रणों की एक श्रृंखला है। आई.पी.एम में चार–तरह के निम्न दृष्टिकोण चरणों का पालन किया जाता है।

अ) आर्थिक क्षति सीमा निर्धारित करना : कीट नियंत्रण कार्रवाई करने से पहले, आर्थिक क्षति सीमा निर्धारित की जाती है। यह एक ऐसा बिंदु है जिससे कीट संख्या और पर्यावरण की स्थिति का संकेत मिलता है। कीट का खेत में मिलना यह संकेत नहीं देता कि उसके नियंत्रण की आवश्यकता है। लेकिन अगर कीट क्षति सीमा पार कर एक आर्थिक खतरा बन जाए, ऐसी स्थिति में कीट नियंत्रण के फैसले में आई.पी.एम मार्गदर्शन करने के लिए महत्वपूर्ण साबित होता है।

ब) कीट की पहचान एवं निगरानी : यह समझना बहुत अनिवार्य है कि सभी कीट के नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती है। बहुत से कीट फायदेमंद भी होते हैं। आई.पी.एम. कीटों की निगरानी करने और उनकी सही पहचान पर जोर देता है, ताकि कीट नियंत्रण का उचित तरीका अपनाया जा सके। निगरानी और सही पहचान से कीटनाशकों के उपयोग की जरूरत वास्तव में है या नहीं उनके गलत इस्तेमाल पर रोक लगाने में सहायता करता है ।

स) क्षति से बचने का निवारण : कीट नियंत्रण की पहली पंक्ति के रूप में, आई.पी.एम. इस बात पर जोर देता है कि कोई भी कीट फसल के लिए किसी भी तरह से खतरा न बन जाए। इसके लिए फसल चक्र, कीट प्रतिरोधी किस्म, कीट–मुक्त बीज का प्रयोग जैसी तकनीकों को शामिल किया जाता है। ये नियंत्रण विधियाँ बहुत प्रभावी और इनकी लागत भी कम होती है एवं इनका मानव या पर्यावरण पर कोई खतरा नहीं होता है।

द) नियंत्रण : जब निगरानी, पहचान और आर्थिक क्षति सीमा से यह संकेत मिलता है कि कीट नियंत्रण की आवश्यकता है, और प्रतिरक्षात्मक तरीके प्रभावी या उपलब्ध नहीं है, तब आई.पी.एम. प्रभावशाली एवं कम जोखिम वाली उचित नियंत्रण पद्धति का मूल्यांकन करता है। प्रभावी, कम जोखिम वाले कीट नियंत्रणों को पहले चुना जाता है, जिसमें अत्यधिक लक्षित रसायन शामिल होते हैं। अगर आगे की निगरानी, पहचान और क्षति सीमा से संकेत मिलता है कि कम जोखिम भरा नियंत्रण काम नहीं कर रहा है, तो अतिरिक्त कीट नियंत्रण विधियों को उपयोग किया जाता है, जैसे कीटनाशकों के लक्षित छिड़काव। कीटनाशकों का छिडकाव कर कीट नियंत्रण करना आई.पी.एम. में अंतिम उपाय होता है।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन कैसे ?

बीज के चयन तथा बिजाई से लेकर फसल की कटाई तक विभिन्न विधियां, जो प्रयोग समयानुसार एवं क्रमानुसार आई.पी.एम. विधि में अपनाई जाती है, इस प्रकार हैं:

प्रायोगिक नियंत्रण

प्रायोगिक नियंत्रण में परम्परागत तरीके से अपनायी जाने वाली कृषि क्रियाओं में क्या परिवर्तन लाया जाए, जिससे कीड़ों तथा बीमारियों से होने वाले दुष्प्रभाव को रोका जाए या कम किया जाए। यह विधियां पुराने समय से चली आ रही है लेकिन आधुनिक रसायनों के आने से इनका प्रयोग कम होता जा रहा है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित तरीके अपनाए जाते हैं:

- साफ, उपयुक्त एवं प्रतिरोधी किस्मों का चयन तथा बोने से पहले बीज उपचार करना।
- उचित बीज दर एवं पौध अन्तरण।
- गहरी जुताई करके उसमें मौजूद कीड़ों तथा बीमारियों की विभिन्न अवस्थाओं तथा खरपतवारों को नष्ट करना।
- खेतों से फसल अवशेषों को हटाना तथा मेड़ों को साफ रखना।
- खाद तथा अन्य तत्वों की मात्रा का निर्धारण करने के लिए मिट्टी परीक्षण करवाना।
- पौधारोपण से पहले पौधें की जड़ों को जैविक फफूंदनाशक ट्राइकोडरमा विरडी से उपचारित करें।
- उर्वरक प्रबंधन अर्थात उर्वरक की सही मात्रा उचित समय पर देना।
- फसल बिजाई और कटाई का उचित समय निश्चित करना ताकि फसल कीड़ों तथा बीमारियों के प्रकोप से बच सकें।
- पौधों की सही सघनता रखें ताकि पौधे स्वस्थ रहें।
- समुचित जल प्रबंधन।
- फसल चक्र अपनाना अर्थात एक ही फसल को उसी खेत में बार–बार न उगाना। इससे कई कीड़ों तथा बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है।
- फसल में समय से उचित नमी की अवस्था में सन्तुलित खाद व बीज की मात्रा डालें ताकि पौधे प्रारम्भिक अवस्था में स्वस्थ रह कर खरपतवारों से आगे निकल सकें।
- समकालिक रोपण।
- खरपतपार का समुचित प्रबन्धन करना। यह पाया गया है कि बहुत से खरपतवार कई तरह की बीमारियों तथा कीडों को संरक्षण देते हैं।
- बिजाई के 45 दिनों तक खेतों से खरपतवारों को फूल आने की अवस्था से पहले ही निकाल दें।

यांत्रिक नियंत्रण

इस विधि को फसल रोपाई के बाद अपनाना आवश्यक है। इसके अंतर्गत निम्न तरीके अपनाए जाते हैं :

- खेत में बांस के पिंजरे लगाना तथा उनमें कीड़ों के अण्ड समूहों को इकट्ठा करके रखना ताकि मित्र कीटों का संरक्षण तथा हानिकारक कीटों का नाश किया जा सके।
- कीड़ों के अण्ड समूहों, सूडियों, प्यूपों तथा वयस्कों को इकट्ठा करके नष्ट करना। रोगग्रस्त पौधों या उनके भागों को नष्ट करना।
- प्रकाश प्रपंच की सहायता से रात को कीड़ों को आकर्षित करना तथा उन्हें नष्ट करना।

- कीड़ों की निगरानी व उनको आकर्षित करने के लिए फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग करना तथा आकर्षित कीड़ों को नष्ट करना।
- हानिकारक कीट सफेद मक्खी व तेला के नियंत्रण के लिए चिपकने वाली नीली पट्टी का प्रयोग करें।

आनुवंशिक नियंत्रण

इस विधि से नर कीटों में प्रयोगशाला में रसायनों या विकिरण तकनीक से नंपुसकता पैदा की जाती है और फिर उन्हें काफी मात्रा में वातावरण में छोड़ दिया जाता है ताकि वे वातावरण में पाए जाने वाले नर कीटों का सामना कर सकें। लेकिन यह विधि द्वीप समूहों में ही सफल पाई जाती है।

संगरोध नियंत्रण

इस विधि में सरकार द्वारा प्रचलित कानूनों को सख्ती से प्रयोग में लाया जाता है जिसके तहत कोई भी मनुष्य कीट या बीमारी ग्रस्त पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जा सकता। यह दो तरह का होता है जैसे घरेलू तथा विदेशी संगरोध।

जैविक नियंत्रण

फसलों के हानिकारक कीटों को नियंत्रित करने के लिए उनके प्राकृतिक शत्रुओं को प्रयोग में लाना जैव नियंत्रण कहलाता है। फसलों को हानि पहुँचाने वाले जीव नाशीजीव कहलाते हैं। प्रकृति में मौजूद फसलों के नाशीजीव 'प्राकृतिक शत्रु', 'मित्र जीव', 'मित्र कीट', 'किसानों के मित्र', 'बायो एजेंट' आदि नामों से जाने जाते हैं। जैव नियंत्रण एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन का महत्वपूर्ण अंग है। इस विधि में नाशीजीवी व उसके प्राकृतिक शत्रुओं के जीवनचक्र, भोजन, मानव सहित अन्य जीवों पर प्रभाव आदि का गहन अध्ययन करके प्रबंधन का निर्णय लिया जाता है।

कीटों (नाशीजीवों) के नियंत्रण के लिए प्रयोग किए जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं की तीन श्रेणियां हैं, परजीवी, परभक्षी एवं रोगाणु। परजीवी कीट अपना जीवन चक्र दूसरे कीड़ों के शरीर में पूरा करते हैं जिसके परिणामस्वरूप् दूसरे कीड़े मर जाते हैं। यह परजीवी कई प्रकार के होते हैं जैसे अण्ड परजीवी, प्यूपा परजीवी, अण्ड सुण्डी परजीवी, वयस्क परजीवी आदि। इनके उदाहरण हैंः ट्राइकोग्रामा, ब्रेकान, काटेशिया, किलोनस, एन्कारशिया इत्यादि।

परभक्षी अपने भोजन के रूप में अपने से छोटे दूसरे कीडों का शिकार करते हैं। यह फसलनाशी कीटों को खा जाते हैं।

परभक्षी की विशेषताएँ

- परभक्षी अपने जीवन के दौरान अण्डे को छोडकर सारी अवस्था में स्वतंत्र रहता है।
- एक अपरिपक्व कीट अपने जीवन काल में वयस्क होने तक बहुत से छोटे नाशीजीवों का उपभोग करता है।
- यह अपने अण्डों को परजीवी के समीप देता है।
- अण्डे से लार्वा और निम्फ निकलकर परजीवी को पकड़ता है और उसे खा जाता है।
- परभक्षी अपरिपक्व और व्यस्क अवस्था में मांसाहारी होता है लेकिन कुछ परभक्षी मांसाहारी नहीं होते जैसे सर्फिड फ्लाई ।

परभक्षी के उदाहरणः मकड़ी, ड्रेगन मक्खी, डेमस मक्खी, कोकसीनेलिड बीटल, प्रेइंगमेन्टिस, क्राइसोपरला, सिरफिड, इअरविग, ततैया, चींटियां, इत्यादि।

रोगाणु सूक्ष्म जीव होते है जो हानिकारक कीटों में बीमारियाँ उत्पन्न कर उन्हें मार डालते हैं। रोगाणुओं की प्रमुख श्रेणियां हैं: फफूँद, बैक्टीरिया तथा वायरस, इनके अतिरिक्त कुछ सूत्रकृमि भी कीटों में बीमारियां उत्पन्न करके उन्हें मार डालते हैं। इनके उपयोग और प्रभाव के कारण इन्हें बायोपेस्टिसाईड भी कहते हैं। इनके उदहारण हैं:

फफूँद : प्रकृति में 90 प्रतिशत कीट, उनकी विभिन्न अवस्थाएं (अण्डे, सूंडी, प्यूपा, वयस्क) फफूँद के आक्रमण से नष्ट हो जाते हैं। उदाहरणतः *ब्यूवेरिया बासियाना, मेटारिजियम एनिसाप्ली, हिरिस्टुला, वार्टिसिलियम लिनाई*, आदि। फफूंद का आक्रमण सभी कीटों पर लगभग समान रूप से होता है। फफूंद के आक्रमण से कीट 10 से 15 दिनों में मर जाते हैं। *मेटारिजियम एनिसाप्ली*, का प्रयोग टिड्डी दल के नियंत्रण में व्यापक रूप से किया जा रहा है। *ब्यूवेरिया बासियाना* नरम शरीर वाले कीड़ों के लिए बहुत प्रभावी है। फफूंद संक्रमण द्वारा कीड़ों को मारती है। फफूंद द्वारा संक्रमण के लिए नमी का होना आवश्यक है। संक्रमण शरीर से संपर्क में आने से होता है। फफूंद कीड़ों की सभी अवस्थाओं पर प्रभावकारी होती है।

बैक्टीरिया : प्रकृति में *बेसिलस थूरिनजैंसिस* और *बेसिलस पौपिली* नामक बैक्टीरिया कीट नियंत्रण में प्रभावकारी है। लैपीडॉप्टरन कीटों के नियंत्रण में *बेसिलस थूरिनजैंसिस* का उपयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है। बैक्टीरिया संक्रमण द्वारा कीड़ों को मारते हैं, संक्रमण आहार द्वारा होता है।

वायरस : प्रकृति में न्यूक्लियो पॉलीहाइड्रोसिस वायरस और ग्रेन्यूलोसिस नामक कीट नियंत्रण में प्रभावकारी है। वायरस संक्रमण द्वारा कीड़ों को मारते हैं, संक्रमण आहार द्वारा होता है। वायरस प्रजाति विशेष होते हैं। एक प्रजाति के लिए उसका खास वायरस ही लाभकारी होता है। अतः वायरस के प्रयोग से पहले कीड़ों की सही पहचान होना आवश्यक है।

जैव नियंत्रण रणनीतियाँ

जैव नियंत्रण की तीन रणनीतियां हैं:

प्राकृतिक शत्रुओं का प्रवेश : इस विधि में प्राकृतिक शत्रुओं को अन्य स्थान से लाकर आक्रमणकारी कीटों पर छोड़ते हैं। यह बड़ी सावधानी के साथ वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। नाशीजीवों के नए स्थानों पर फैल जाने से वहाँ उनके प्राकृतिक शत्रु मौजूद नहीं रहते। वैज्ञानिक उनके प्राकृतिक शत्रुओं को विश्व में अन्य स्थानों पर खोजते हैं। उनके सुरक्षित होने को निश्चित करते हैं। फिर उन्हें प्रयोग में लाते हैं।

बढ़ोत्तरी करना : इस विधि में पहले से ही मौजूद प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या को इस तरह बढ़ाया जाता है ताकि हानिकारक कीड़ों की संख्या को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रख सकें। यह बढोत्तरी प्रयोगशाला में गुणन किए हुए प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा की जाती है।

संरक्षणः यह सबसे महत्वपूर्ण रणनीति है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें प्रकृति में पाये जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं यानि मित्र जीवों को संरक्षण दिया जाता है, ताकि उनकी संख्या का संतुलन हानिकारक कीड़ों के साथ बना रहे। फसलों में हानिकारक कीड़ों की संख्या मित्र जीवों, प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या से बहुत कम होती है। यह मित्र जीव, प्राकृतिक शत्रु हानिकारक कीड़ों को नष्ट करते रहते हैं और

उनकी संख्या को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखने में हमारी सहायता करते हैं। हम मित्र कीटों तथा दुश्मन कीटों की पहचान न होने के कारण या शत्रु कीड़ों के आपेक्षित आक्रमण के भय या शत्रु कीड़ों तथा मित्र कीटों के अनुपात का सही आंकलन न होने की स्थिति में रासायनिक कीटनाशकों का छिड़काव तभी करें जब एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के अन्य तरीके कारगर न हो। रासायनिक कीटनाशकों का छिड़काव उन्हीं पौधों या पंक्तियों पर करें जहाँ आक्रमण आर्थिक हानि स्तर से अधिक हो। हमें फसलों की लगातार निगरानी करते रहना चाहिए अर्थात हानिकारक कीड़ों, मित्र जीवों, बीमारियों, खरपतवारों की उपस्थिति तथा संख्या का आंकलन हर समय करते रहना चाहिए। संरक्षण के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- हानिकारक कीड़ों के अण्ड समूहों को एकत्र करके खेत में स्थापित बांस पिंजरे में रखना ताकि मित्र कीटों को बचाया जा सके तथा हानिकारक कीटों को नष्ट किया जा सके।
- किसानों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये ताकि वे हानिकारक तथा मित्र कीटों को पहचान कर छिडकाव के समय मित्र कीटों को कीटनाशकों के सीधे सम्पर्क से बचा सकें।
- यदि सभी नाशीजीव प्रबंधन विधियां लाभकारी न हों तो सुरक्षित कीटनाशकों का उचित मात्रा में उचित विधि द्वारा सही समय पर उपयोग करना चाहिए।
- रसायनों के प्रयोग से पहले मित्र तथा शत्रु कीटों का अनुपात तथा आर्थिक हानि स्तर देखना चाहिए। यदि यह अनुपात 1:1 हो तो रसायनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- यथासंभव, रसायनों को स्पोट या स्ट्रीप विधि द्वारा ही प्रयोग में लाना चाहिए अर्थात जिस जगह हानिकारक कीड़ों की उपस्थिति आर्थिक हानि स्तर से ज्यादा पाई जाए, उसी जगह रसायनों का प्रयोग करें ताकि दूसरी जगह के प्राकृतिक शत्रु संरक्षित रहे।
- बीज बोने तथा फसल काटने का समय इस तरह निर्धारित किया जाए ताकि फसल कीड़ों तथा बीमारियों के मुख्य प्रकोप से बच सके।
- मेड़ों पर या उनके आसपास फूल वाली या ट्रेप फसल लगानी चाहिए जिससे मित्र कीड़ों को मकरन्द तथा संरक्षण मिल सके।
- नर्सरी के पौधों की जड़ों को ट्राईकोडरमा विरडी, मैटारिजियम के घोल में डुबोकर उपचारित करके ही लगाना चाहिए।
- फसल चक्र अपनाने से भी किसान, मित्र कीड़ों को संरक्षण प्रदान कर सकते हैं।

निष्कर्ष

रसायनों के अन्धाधुन्ध तथा बिना सोचे समझे बार–बार प्रयोग से कीड़ों तथा बीमारियों में प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है जिससे रसायनों की निर्धारित मात्रा प्रयोग करने से कीड़े या बीमारियां नहीं मरती बल्कि कुछ दिनों के बाद इनकी संख्या और बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थिति में रसायनों का प्रयोग करना पर्यावरण के प्रदूषण को बढ़ाता है। इन दुष्प्रभावों को मध्यनजर रखते हुए भारत सरकार ने ज्यादा जहरीले कीटनाशकों का उत्पादन कम अथवा प्रयोग बन्द कर दिया है या उनका प्रयोग कुछ फसलों पर ही करना सुनिश्चित किया है। अतः किसानों को सलाह दी जाती है कि ऐसे सभी उपायों को क्रमानुसार प्रयोग में लाना चाहिए जो फसलों को कीड़ों से बचा सकें तथा पर्यावरण को भी प्रदूषित होने से बचाया जा सके।

समाप्त

अनिता मान, प्रवेन्द्र श्योराण, बी॰एल॰ मीणा, अश्वनी कुमार एवं आर॰के॰ यादव
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: anita.maan@icar.gov.in

लवणग्रस्त पारिस्थितिकी तंत्र में प्रक्षेत्र विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन–एक सफल गाथा

कृषि योग्य भूमि के गिरते स्वास्थ्य की समस्या से भारत ही नहीं पूरा विश्व जूझ रहा है। इसी श्रृंखला में संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा वर्ष 2015 को अंतर्राष्ट्रीय मृदा स्वास्थ्य वर्ष घोषित किया गया था जिसमें मृदा के गिरते स्वास्थ्य पर सभी देशों में जन–जागृति एवं मृदा की उर्वरता एवं उत्पादन क्षमता बढ़ाने के कारगर कदम उठाने का संकल्प लिया गया। बाढ़ एवं सूखे की तुलना में मृदा उर्वरता में गिरावट कदाचित ही विभिन्न हितकारकों का ध्यान आकर्षित करती है क्योंकि बाढ़ एवं सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं की तुलना में यह एक धीमी प्रक्रिया है और इसके दुष्परिणाम इतने घातक नहीं होते। मृदा में मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की निरंतर हो रही कमी न केवल फसल उत्पादकता में अस्थिरता के लिए जिम्मेदार है, अपितु जैविक और अजैविक तनावों के प्रति फसलों की संवेदनशीलता भी बढ़ाती है। पोषक तत्वों से भरपूर स्वस्थ मिट्टी ही स्वस्थ पौधों को जन्म देगी और अन्ततः ज्यादा उपज प्राप्त होगी। भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित्त मात्रा में किया जाए। भूमि में सभी मुख्य व सूक्ष्म तत्वों की मात्रा सही अनुपात में होने पर ही आवश्यक पैदावार ली जा सकती है। मिट्टी परीक्षण का पूरा ब्यौरा मृदा स्वास्थ्य कार्ड के रुप में किसानों को उपलब्ध कराया जा रहा है। इसी प्रकार मिट्टी की जाँच से मृदा में किसी भी प्रकार की समस्या अथवा कल्लर की जानकारी व रोकथाम के उपाय के बारे में जानकारी मिलती है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु कई कारगर उपाय सुझाए गए हैं जिसमें प्रक्षेत्र विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। विशिष्ट कृषक प्रक्षेत्रों के बारे में एकत्रित की गई विविध जानकारियाँ जैसे खादों/उर्वरकों का स्रोत, दर, प्रयोग का समय और विधि, के संदर्भ में निर्णय लेने में अति उपयोगी होते हैं जिससे दक्ष प्रयोग, सुलभ एवं पर्यावरण अनुकूल पोषक तत्व प्रबंधन निर्धारित किया जा सकता है। स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन (एसएसएनएम) अच्छी कृषि का एक प्रमुख घटक है और विभिन्न भू–दृश्यों में मृदा पोषक तत्वों के विभिन्न प्रबंधन से संबंधित है।

खनिज तत्वों का सर्वेक्षण और प्रदर्शन तकनीकी हस्तक्षेप

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई) के अन्तर्गत मुंदड़ी गाँव में प्रदर्शन लगाये गये। गाँव की मिट्टी और पानी की गुणवत्ता के स्थानिक परिवर्तनशीलता के आंकलन के साथ–साथ मिट्टी की उर्वरता की स्थिति से पता चला कि लगभग एक तिहाई क्षेत्र क्षारीय (मृदा पीएच मान 8.2) तथा केवल 30.3 प्रतिशत क्षेत्र में ही अच्छी गुणवत्ता वाला भूमिगत जल स्त्रोत है। इसके अतिरिक्त 36.5 प्रतिशत भूमि मामूली क्षारीय, 31.5 प्रतिशत क्षारीय और 1.7 प्रतिशत लवण प्रभावित है। खेतों में जिंक की कमी (उपलब्ध जिंक 0.6 पीपीएम) 50 प्रतिशत जबकि बोरोन (पानी में घुलनशील बोरोन 0.5 पीपीएम) की कमी 90 प्रतिशत देखी गई। मिट्टी में मुख्य और सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति का विश्लेषण परमाणु अवशोषण स्पेक्ट्रोफोटोमीटर (ए.ए.एस.) द्वारा किया गया। आरकेवीवाई प्रयोग के अन्तर्गत चयनित 3 किसानों की मृदा के व्यवस्थित

तालिका 1. चयनित खेतों की मिट्टी और पानी की गुणवत्ता की स्थिति

मानक	सूबे सिंह पुत्र फूल सिंह	सुरजीत सिंह पुत्र सुंदरा	दलीप सिंह पुत्र शेर सिंह
	मृदा गुणवत्ता के मानक		
मिट्टी का पीएच मान	8.21	8.51	8.00
वैद्युत चालकता (ईसीई) (डेसीसीमन्स/मीटर)	0.65	0.85	0.44
उपलब्ध नाइट्रोजन (किग्रा/हैक्टर)	124	86	147
उपलब्ध फास्फोरस (किग्रा/हैक्टर)	2.7	3.8	6.0
उपलब्ध पोटेशियम (किग्रा/हैक्टर)	228	228	420
उपलब्ध ज़िंक (पीपीएम)	0.20	0.55	0.44
उपलब्ध बोरोन (पीपीएम)	0.11	0.38	0.25
	जल गुणवत्ता के मानक		
वैद्युत चालकता (डेसीसीमन्स/मीटर)	0.71	1.22	0.64
अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी) (मिलीतुल्यांक प्रति लीटर)	4.40	7.20	3.80
सोडियम अधिशोषण अनुपात (एसएआर)	1.06	1.84	1.12

किसान के खेत से मृदा नमूने एकत्रित करते हुये तथा लहलहाती गेहूँ की फसल

और व्यापक स्तर पर पोषक तत्वों के अध्ययन से खुलासा हुआ कि किसान मुख्य चावल–गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की फसल में ज़िंक और बोरोन के उपयोग पर विचार किए बिना 10–15 प्रतिशत ज्यादा नाइट्रोजन और 15–20 प्रतिशत कम फॉस्फोरस डाल रहे हैं जोकि चयनित क्षेत्रों की मृदा की जाँच से ज्ञात होता है। विभिन्न किसानों के चयनित खेतों की मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति तालिका 1 में दी गई है।

इस पृष्ठभूमि के साथ, उपरोक्त किसानों के खेत में स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन के आधार पर प्रदर्शन किए गए जिसमें किसान के चयनित खेत को तीन भू–खण्डों (भागों) में बांटा गया। एक भू–खंड में वर्तमान में राज्य की सिफारिश की गई उर्वरक खुराक, दूसरे में किसान का नियमित पोषक तत्व प्रबंधन (तालिका 2) और तीसरे भाग में मृदा परीक्षण आधारित स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन किया गया ।

तालिका 2. उर्वरक प्रबंधन, उपज और आर्थिक प्रतिफल

मानक	स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन	राज्य की सिफारिश की गई उर्वरक मात्रा	किसान का नियमित पोषक तत्व प्रबंधन
उर्वरक की मात्रा (एनपीकेः ज़िंकः बोरॉन) की मात्रा (किग्रा/हैक्टर)	150:60:0:5:1	150:60:30:5:0	168:47:15:5:0
आवेदित कुल उर्वरक (किग्रा/हैक्टर)	216 (–6.1 प्रतिशत)	245 (+6.5 प्रतिशत)	230
उपज (किग्रा/हैक्टर)	4732 (+12 प्रतिशत)	4587 (+8.5 प्रतिशत)	4226
उर्वरकप्रयोग दक्षता (किग्रा. उपज/किग्रा. उर्वरक)	21.9	18.7	18.4
उत्पादन लागत (रु/हैक्टर)	29672	29367	27777
शुद्ध आय (रु/हैक्टर)	52428	50217	45544
लाभ–लागत अनुपात	2.77	2.71	2.64
परिवर्ती लागत पर लाभ	3.63	2.94	–

परीक्षणों के परिणाम

मृदा पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता और पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता के आधार पर स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन के साथ 12 प्रतिशत ज्यादा पैदावार और 6.1 प्रतिशत कम उर्वरक का उपयोग हुआ। इसके अतिरिक्त इस प्रयोग से उर्वरक उपयोग दक्षता (21.9 किग्रा अनाज/किग्रा उर्वरक) और लाभ–लागत अनुपात (2.77) भी बेहतर पाया गया। प्रदर्शनों के उत्साहजनक परिणाम यह रहे कि स्थान विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से संतुलित उर्वरक उपयोग पर निवेश किए गए प्रत्येक रुपए के फलस्वरूप बेहतर मुनाफा (3.63 रुपए) प्राप्त हुआ। सिफ़ारिश की गई नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम और ज़िंक की मात्रा के मुक़ाबले बोरोन के अनुप्रयोग से अतिरिक्त पोषण अनुशंसित खुराक आर्थिक रूप से अधिक फायदेमंद रही। चयनित किसान भी मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक प्रबंधन के माध्यम से गेहूँ की ज्यादा पैदावार लेकर आश्वस्त हुये और अपने क्षेत्र के अन्य किसानों को भी प्रेरित करना शुरू कर दिया। किसानों ने नियमित रूप से अपने खेत की मिट्टी का परीक्षण करवाने की आवश्यकता को महसूस किया तथा मृदा जाँच करवाकर मृदा स्वास्थ्य कार्ड को प्राप्त करने के लिए अपना इरादा व्यक्त किया। साथ में यह भी संकल्प लिया कि फसलों की बुवाई से पहले मिट्टी के नमूनों का परीक्षण अवश्य करवाएगा। पोषक तत्वों के प्रबंधन से बढ़ी गेहूं की उत्पादकता को देखकर गाँव के अन्य किसानों ने भी वैज्ञानिक हस्तक्षेपों व सलाहों का पालन करने में उत्सुकता दिखाई।

मृदा सुधार तकनीकियों के साथ उर्वरक प्रबंधन रणनीति को किसानों के बीच लोकप्रिय बनाने हेतु निम्नलिखित कारगर उपायों की जरूरत है:

- निरंतर कृषक–वैज्ञानिक संवाद का आयोजन
- कृषक सहभागी अनुसंधान एवं प्रसार कार्यक्रमों का सुदृढीकरण
- लवणग्रस्त क्षेत्रों में प्रक्षेत्र विशिष्ट लवणता सुधार एवं उर्वरक प्रबंधन रणनीतियों का प्रचार –प्रसार

फसलों की उपज बढ़ाने एवं उत्पादों की वांछनीय गुणवत्ता बनाये रखने के लिए पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग की महत्वपूर्ण भूमिका है। फसलों को हमेशा संतुलित उर्वरक की खुराक देने की सिफारिश की जाती है, जो मृदा और फसल के अनुसार तय की जाती है। भारत की निरंतर बढ़ती हुई आबादी के लिए भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाना और उसे टिकाऊ बनाये रखना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हो गया है। वर्ष 2020 तक हमारे देश की जनसंख्या 1.3 अरब तक पहुँचने का अनुमान है जिसके भरण पोषण के लिए 280 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी, जबकि उत्पादन बीते कुछ वर्षों से 210 से 224 मिलियन टन ही हो रहा है। इसलिए, बढ़ती आबादी के लिए पर्याप्त खाद्यान्न का उत्पादन करने और असंतुलित उर्वरक उपयोग के कारण बड़े पैमाने पर नष्ट हुये भू–खंड को क्षरण से बचाने के लिए संतुलित उर्वरक उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसलिए, मौजूदा सिफारिशों में तत्काल सुधार की आवश्यकता है।

समाप्त

.जब हम कठिन कार्यों की चुनौती स्वीकार करते हैं
और उन्हें खुशी और उत्साह से निष्पादित करते हैं,
तो चमत्कार हो सकता है।

कविताएँ

देशराज शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132001 (हरियाणा)

यह संस्थान हमारा है

इस देश के इतिहास का, एक सुनहरा दिन आया था,
1 मार्च 1969 को हिसार में शिलान्यास करवाया था।
सौभाग्य है इस देश का, जिसने यह मुकाम पाया था,
किसानों की समस्या का हल, वैज्ञानिकों से कराया था।
कल्लर भूमि को ठीक करना, वैज्ञानिकों ने स्वीकारा है,
करनाल, पालनगर के सामने, यह संस्थान हमारा है।

इस संस्थान में जैसे ही बाहर से आगन्तुक आते हैं,
देख सुन्दरता संस्थान की मन ही मन मुस्काते हैं।
ऐसा न देखा कोई संस्थान, दिल से आवाज उठाते हैं,
दुबारा यहाँ आने का, संकल्प यहाँ से लेकर जाते हैं।
देख लैब तकनीक हमारी वापस जाना नहीं गंवारा है,
अनेक संस्थानों में एक, अद्भुत संस्थान हमारा है।

1420 लाख हैक्टर उपजाऊ भूमि में 67 लाख हैक्टर कल्लर भूमि पाई जाती है,
वैज्ञानिकों द्वारा 20 लाख हैक्टर भूमि में, हरियाली पैदा कर दी जाती है।
किसानों की पैदावार बढ़ाने हेतु, नई–नई किस्में उगाई जाती है,
नए–नए उपकरणों द्वारा पैदावार की विधि बताई जाती है।
अन्न की जरूरत को पूर्ण करने का, संकल्प हमारा है,
किसानों के साथ सदैव खड़ा, यह संस्थान हमारा है।

जिसने देश का नाम चमकाया, सीएसएसआरआई कहलाता है,
विदेशों के भी वैज्ञानिकों को, प्रशिक्षण यहाँ दिलाता है।
अपने देश में जाकर वे सब, इस संस्थान के गुण गाते हैं,
अनाज की पैदावार बढ़ाकर, हिन्दुस्तान का परचम लहराते हैं।
भूखे पेट कोई न सोए, यह संकल्प हमारा है,
वैज्ञानिकों/अधिकारियों/कर्मचारियों का, यह संस्थान हमारा है।

भूतपूर्व व वर्तमान निदेशकों की कड़ी मेहनत से, यह उपलब्धि पाई है,
अनेकों पुरस्कार दिलाकर संस्थान में, सबको खुशी दिलाई है।
वर्ष 1998 में सर्वश्रेष्ठ संस्थान पुरस्कार दिलाया है,
सरदार पटेल उत्कृष्ट संस्थान पुरस्कार पाकर, संस्थान को सम्मान दिलाया है।
दो बार प्राप्त कर गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, हिन्दी का सम्मान बढ़ाया है,
भूजल ऑगमेन्टेसन पुरस्कार पाकर, नया इतिहास रचाया है।
एनजी रंगा किसान पुरस्कार, प्राप्त करने का लक्ष्य हमारा है,
क्षारीय बंजर भूमि में खिला, यह संस्थान हमारा है।

समाप्त

कवि अवध बिहारी 'अवध'
ग्राम–चक चपकी, डाकघर–चपकी, जिला–सोनभद्र–231223 (उत्तर प्रदेश)
मोबाईल नं. 09794201708, 6386353257

तिरंगा फहराई द पिया

हमका लाल किलवा के दर्शन कराई द पिया।
आइल पन्द्रह अगस्त! तिरंगा फहराई द पिया।

जब स्वतंत्रता के लागल आग।
अंग्रेज देशवा छोड़के गइलन भाग।।

दिलवा में लागल अग्निया बुझाई द पिया।
आइल पन्द्रह अगस्त! तिरंगा फहराई द पिया।।

भईल स्वतंत्रता के नई भोर।
मनवा नाचे जइसे मोर।।

स्वतंत्रता के दियना जलाई द पिया।
आइल पन्द्रह अगस्त! तिरंगा फहराई द पिया।।

लागल चाहे भले ही देरी।
टूटल परतंत्रता के बेड़ी।।

अमर शहीदन के याद दिलाई द पिया।
आइल पन्द्रह अगस्त! तिरंगा फहराई द पिया।।

'अवध' चमकल आजादी के सितारा।
भारत देशवा में भईल उजियारा।।

शतरंगी चुनरी से भारत माँ को सजाई द पिया।
आइल पन्द्रह अगस्त! तिरंगा फहराई द पिया।।

समाप्त

कवि अवध बिहारी 'अवध'
ग्राम–चक चपकी, डाकघर–चपकी, जिला–सोनभद्र–231223 (उत्तर प्रदेश)
मोबाईल नं. 09794201708, 6386353257

रक्षाबंधन की बधाईयाँ

मेरा शत–शत साद अभिवादन! 'स्वीकार कोटि–कोटि हार्दिक अभिनन्दन हो!

मंगलमय भाई–बहन के पवित्र प्रेम का पावन पर्व रक्षाबंधन हो!!

रक्षा बन्धन के पवित्र पर्व की महिमा अपार।
भाई–बहन के जीवन में पुष्पित हुआ पावन प्यार।।
सुखमयी सुनहरी सुरसरि बहे घर, आँगन, द्वार।
ऐसा सुनहरा रक्षाबंधन का हो पावन त्योहार।।

जीवन रूपी बगिया महके, जैसे सुन्दर सुरभित चन्दन हो!

मंगलमय भाई–बहन के पवित्र प्रेम का पावन पर्व रक्षाबंधन हो !!

जीवन रूपी बगिया खिल उठे फूलों की तरह।
आनन्द की बहार आये सावन के झूलों की तरह।।
पल–पल पुष्पित पल्लवित रहे, बसन्त बहारों की तरह।
जीवन ज्योति जगमग हो! चांद–सितारों की तरह।।

बिखरे अनुपम छटा! नित्य–निरंतर जैसे निकेतन नन्दन हो!

मंगलमय भाई–बहन के पवित्र प्रेम का पावन पर्व रक्षाबंधन हो!!

शान्ति रूपी सुरभि महके, जीवन में नव उल्लास हो।
सफलता कदम चूमे, अधरों पर मृदु मधुहास हो।।
हर कदम मंजिल की ओर बढ़े! सतत विमल विकास हो।
जीवन रूपी बगिया में ज्ञान रूपी परम पावन प्रकाश हो।।

सदा सुखी, स्वस्थ, समृद्धिमय मेरी बहन का अनुपम जीवन हो!

मंगलमय भाई–बहन के पवित्र प्रेम का पावन पर्व रक्षाबंधन हो!!

समाप्त

राजभाषा कार्यक्रम

किसान मेला
स्वागत करता है

अनिल कुमार, रामेश्वर लाल मीणा एवं सुनिल कुमार त्यागी
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: anilkumar_cpri@yahoo.com

संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी

राजभाषा हिन्दी को बढावा देने एवं कृषि अनुसंधान में वैज्ञानिकों, कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक वर्ष हिन्दी में अनेक गतिविधियाँ भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में आयोजित की जाती है। वर्ष 2018–19 के दौरान आयोजित कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों का कृषि किरण के वार्षिकांक 11 में प्रकाशन किया जा रहा है।

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी संस्थान में 14 से 28 सितम्बर 2018 के दौरान हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। पखवाड़े का शुभारंभ मुख्य अतिथि डा॰ आर्जव शर्मा, निदेशक, भाकृअनुप –राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल ने दीप प्रज्जवलित करके किया। हिन्दी पखवाड़ा आयोजन समिति के अध्यक्ष डा॰ अनिल कुमार ने हिन्दी के महत्व को बताते हुए राजभाषा के नियमों व अधिनियमों की जानकारी दी तथा हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं का ब्योरा प्रस्तुत किया। हिन्दी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि डा॰ आर्जव शर्मा ने इस संस्थान में हिन्दी में हो रहे कार्यों की सराहना की और उन्होंने कहा कि हिन्दी पखवाडे के दौरान हिन्दी भाशा का अधिक से अधिक संचार एवं प्रसार होता है। उन्होंने जानकारी देते हुए बताया कि चीन के विश्वविद्यालयों में 50 प्रतिशत विद्यार्थी हिन्दी भाषा सीख रहे हैं ताकि वे अपना व्यापार आदि कार्य भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभावी रूप से कर सकें। उन्होंने कहा कि भारत एक महान देश है जो कि विविधताओं से भरा हुआ है और भाषा सारी विविधताओं को जोड़ने में कड़ी का काम करती है। हिन्दी भाषा एक सरल, सशक्त एवं वैज्ञानिक भाषा है इसको सुदृढ़ करने के लिए हमें अधिक से अधिक हिन्दी में काम करना होगा। हिन्दी राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है व इसका गौरवशाली इतिहास रहा है। इसके प्रयोग से हमें गौरवान्वित महसूस करना चाहिये।

हिन्दी पखवाड़े के उद्घाटन अवसर पर सभा को संबोधित करते मुख्य अतिथि डा॰ आर्जव भार्मा

संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा का हिन्दी पखवाड़े के शुभारंभ अवसर पर संबोधन

इससे पूर्व संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा ने मुख्य अतिथि का पुष्पगुच्छ देकर स्वागत किया और बताया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह निर्णय लिया गया था कि राज–काज में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्ष तक होगा उसके बाद केवल हिन्दी राज–काज की भाषा होगी लेकिन विरोध के कारण यह निर्णय लागू नहीं हो पाया। आज गूगल व याहू आदि वेबसाइटों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है। भारतीय नेता विदेशों में जाकर विश्व मंच पर हिन्दी में संबोधन करने लगे हैं। सरकारी तंत्र का हिस्सा होने के कारण हमारा भी यह कर्तव्य है कि हम भी अपना सरकारी कामकाज राजभाषा में ही करें।

हिन्दी पखवाड़े का समापन व पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 28 सितम्बर 2018 को संस्थान के सभागार में आयोजित किया गया। समापन समारोह के मुख्य अतिथि माननीय श्री गगन कुमार, सहायक महाप्रबंधक भारतीय स्टेट बैंक, करनाल रहे।

समापन समारोह के दौरान सर्वप्रथम हिन्दी पखवाड़ा समिति के अध्यक्ष डा॰ अनिल कुमार ने हिन्दी पखवाड़े की विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। मुख्य अतिथि श्री गगन कुमार ने अपने संबोधन में सरकारी काम–काज में हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि देश के 65 प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते व समझते हैं और हिन्दी एकमात्र ऐसी भाषा है जो भारत को एक सूत्र में पिरो सकती है। स्वत्रंतता आंदोलन में हिन्दी का महान योगदान रहा है। अंग्रेजों ने हिन्दी को महत्वहीन करके अपनी भाषा अंग्रेजी को महत्व दिया इसलिए वह भारत पर शासन कर पाए। यदि हमें पूरे विश्व पर अपना प्रभुत्व कायम करना है तो हमें हिन्दी को अपनाना होगा। हमें जो विचार आता है वह हमारी मातृभाषा हिन्दी से ही आता है, बाद में उसे हम अंग्रेजी में लिखते हैं। उन्होंने संस्थान में हिन्दी में किए जा रहे कार्यों की प्रगति को देखकर प्रसन्नता व संतोष व्यक्त किया और कर्मचारियों से आह्वान किया कि वे अपना अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करें। संस्थान के कार्यवाहक निदेशक डा. राजेन्द्र कुमार यादव ने कहा कि हमारे देश की 80 प्रतिशत जनता हिन्दी समझ सकती है तथा 65 प्रतिशत जनता इसको बोल व लिख सकती है। विचारों को मूर्त रूप देने के लिए हिन्दी एक सशक्त भाषा है। हिन्दी को आगे बढ़ाना हमारा संवैधानिक उत्तरदायित्व भी है। आज हिन्दी 80 देशों में बोली जाती है और 200 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। आज गूगल, याहू वेबसाइट भी अपना कार्य हिन्दी में कर रही है। उन्होंने आह्वान किया कि सभी कर्मचारी हिन्दी में अधिक से अधिक कार्य करें। संस्थान में आयोजित पखवाड़े के दौरान संस्थान में हिन्दी के ज्ञान व इसके प्रयोग को बढ़ाने हेतु आशु भाषण प्रतियोगिता, निबंध लेखन, आवेदन लेखन, हिन्दी टंकण, टिप्पणी एवं मसौदा लेखन, सरकारी काम–काज में मूल हिन्दी आलेखन, प्रश्नोत्तरी, चल वैजयन्ती, हिन्दी गीत अन्ताक्षरी व कविता पाठ इत्यादि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

हिन्दी पखवाड़ समापन समारोह के मुख्य अतिथि श्री गगन कुमार संबोधित करते हुए

संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा॰ आर.के.यादव का हिन्दी पखवाड़े के अवसर पर संबोधन

हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं के परिणाम

क्र. सं.	प्रतियोगिता का नाम	विजेताओं के नाम			
		प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रोत्साहन
1.	हिन्दी वाद–विवाद	डा॰ रंजय कुमार सिंह	डा॰ अनिता मान	डा॰ देवेन्द्र सिंह बुंदेला	डा॰ कैलाश प्रजापत
2.	आवेदन पत्र लेखन (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों हेतु)	श्री फतेह सिंह	श्री निरंजन सिंह –	श्री सुभाष चन्द	
3.	तत्काल भाषण	डा॰ सुनिल कुमार त्यागी	डा॰ रामकिशोर फगोड़िया,	श्री देशराज श्रीमती मीना लूथरा	डा॰ प्रवीण कुमार
4	हिन्दी गीत अन्ताक्षरी	डा॰ अनिता मान, डा॰ महति प्रकाश श्री दिलबाग सिंह	डा॰ राजकुमार, श्री तरूण कुमार श्रीमती सुनीता ढींगडा	श्रीमती मीना लूथरा, डा॰ अश्वनी कुमार	श्रीमती रीटा आहुजा
5.	निबंध लेखन	डा॰ विजयता सिंह	श्री फतेह सिंह	श्री नरेन्द्र वैद डा॰ राजकुमार	–
6.	टिप्पणी एवं मसौदा लेखन (नगर स्तरीय)	सुश्री सोनिका यादव	श्री राकेश कुमार	श्रीमती सुषमा गर्ग	श्री दिनेश कुमार, श्री मनजीत सिंह, श्री कुलदीप कुमार, श्री विजय पाल श्रीमती उषा कत्याल, श्रीमती जसबीर कौर, श्री सूरज मीना, श्री करम सिंह, श्रीमती मीना लूथरा, श्री देवेन्द्र कुमार, श्रीमती दिनिका श्री नरेन्द्र वैद, श्रीमती सोनिया अरोड़ा, श्रीमती मीनाक्षी शर्मा, श्री जोगध्यान, श्री अनिल शर्मा, श्री प्रदीप अत्री, श्रीमती दिनेश गुगनानी
7.	प्रश्नोत्तरी	डा॰ राजकुमार, श्री देवेन्द्र यादव डा॰ असीम दत्ता,	श्री नरेन्द्र वैद	सुश्री शिवांगी डा॰ राजकुमार (वानिकी), श्रीमती मीना लूथरा श्री सुभाष चन्द	–
8.	हिन्दी टंकण	श्रीमती सुषमा गर्ग	श्रीमती रीटा आहूजा	–	–
9.	कविता पाठ	सुनिल कुमार त्यागी	श्री नरेन्द्र वैद	प्रवीण कुमार	श्री बृजमोहन मीणा

सभी प्रतियोगिताओं में 30 से 40 अधिकारियों/कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया व विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री गगन कुमार ने हिन्दी योजना के अंतर्गत वर्ष भर हिन्दी में उत्कृष्ट कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों तथा हिन्दी पखवाड़े के दौरान हुई प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार व प्रमाण पत्र वितरित किये। निदेशक महोदय ने हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित की गई 11 प्रतियोगिताओं एवं उनमें भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों की सराहना की तथा विजेताओं को हार्दिक बधाई दी।

नकद पुरस्कार योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत कर्मचारियों की सूची		
क्र॰सं॰	नाम एवं पद	परिणाम
1	श्री जसबीर सिंह	प्रथम
2	श्रीमती जसबीर कौर	द्वितीय
3	श्री आत्म प्रकाश भाटिया	द्वितीय
4	श्री जोगध्यान	तृतीय
5	श्रीमती वीरा रानी	तृतीय
6	श्रीमती अनीता मेहता	प्रोत्साहन

मुख्य अतिथि श्री गगन कुमार चल वैजयन्ती पुरस्कार विजेताओं को सम्मानित करते हुए।

दिनांक 25 सितम्बर 2018 को संस्थान में हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत टिप्पणी एवं मसौदा लेखन प्रतियोगिता में करनाल जिले में स्थित केन्द्र सरकार के समस्त कार्यालयों, राष्ट्रीयकृत बैंकों, उपक्रमों व निगमों के लगभग 80 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

राजभाषा हिंदी में हुई अन्य गतिविधियाँ

संस्थान राजभाषा समिति की बैठक: 30 मई 2018, 21 अगस्त 2018, 10 दिसम्बर 2018 तथा 11 मार्च 2019 को संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चार बैठकों का आयोजन किया गया, जिसमें कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 12 जून 2018 को सम्पन्न हुई नराकास करनाल की छमाही समीक्षा बैठक में संस्थान को वर्ष 2017–18 के अंतर्गत संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने हेतु अपने वर्ग में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 30 नवम्बर 2018 को सम्पन्न हुई नराकास करनाल की छमाही समीक्षा बैठक में संस्थान द्वारा प्रकाशित वार्षिक हिन्दी पत्रिका 'कृषि किरण' को नराकास करनाल द्वारा सदस्य कार्यालयों के लिए आयोजित वर्ष 2017–18 की उत्कृष्ट पत्रिका प्रतियोगिता में तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

पखवाड़े के अंतर्गत नगर स्तरीय टिप्पणी व मसौदा लेखन प्रतियोगिता का आयोजन

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की छमाही समीक्षा बैठक में राजभाषा हिन्दी में उल्लेखनीय कार्य करने हेतु प्रथम पुरस्कार व प्रशिस्त पत्र प्राप्त करते संस्थान के प्रशासनिक व राजभाषा अधिकारी

समाप्त

ICAR-CSSRI

खरीफ किसान मेला
खरीफ
किसान मेला

खरीफ किसान मेला
खरीफ
किसान मेला

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ